भूमिका

संसार का प्रत्येक प्राणी अपने समस्त दुःखों की कारण सहित निवृत्ति एवं परमानन्द की स्थिति अनादिकाल से चाह रहा है । कोई भी प्राणी एक क्षण के लिये तनिक भी दुःख एवं अल्प सुख नहीं चाहता है । इस लक्ष की प्राप्ति हेतु रात-दिन, यहाँ-वहाँ, इधर-उधर, भला-बुरा कर्म करता है किन्तु अन्त में दुःखानुभूति ही अनुभव में होती है । संसार के पदार्थ अनित्य होने से उससे मिलने वाला सुख अखंड़ नहीं हो सकता ।

'यो वै भूमा तत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति' (छा. उप. ७/२३/२१)

विभू आत्मा ही परमानन्द स्वरूप है, अल्पमें सुख नहीं है ।

प्राणी मात्र के इस परम पुरुषार्थ रूप मोक्ष की प्राप्ति का एक मात्रसाधन आत्म ज्ञान ही है ।

'तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'
'तरति शोकं आत्मवित्'

अर्थात आत्मा ज्ञान द्वारा ही यह जीव उस पर परमात्मा को सदगुरु की कृपा द्वारा सोऽहम् रूप जान समस्त दुःखों के सागर से पार होकर परमानन्द की प्राप्ति कर सकता है । उसके लिये ज्ञान के अलावा कर्म, उपासना और योगादि कोई स्वतन्त्र साधन नहीं है ।

अतः उस दुखः की निवृति एवं परमानन्द की प्रप्ति हेतु किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की शरण में जाना चाहिये । उनकी सेवा व प्रसन्नता प्राप्त कर अपने कलयाणार्थ विनम्र भाव द्वारा जिज्ञासा करना होगा कि हे गुरुदेव ! हे मुक्तिप्रदाता ! मैं परमशान्ति की इच्छा से आपकी शरण में आया हूँ आप कृपा करके मुझे

असतोमां सदगमय ।
तमसो मां ज्योतिर्गमय ।
मृत्योर्मा अमृतम गमय ।

हे गुरुदेव ! संसार के असत् मार्ग से बलपुर्वक हटाकर सत्य पथानुरागी, बना दीजिये । अज्ञान अन्धकार से निकाल कर दिव्य ज्ञान प्रकाश में लाने की कृपा कीजिये । तथा मृत्यु भय से हटा अमृत आत्मानुभूति कराने की कृपा करें।

कार्पण्य दोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म सम्मूढ चेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।

– गीता : २/७

हे नाथ ! मै आपके शरणगत हूँ । धर्म–कर्म के विषय में मैं मोहित चित्त हुआ आपसे जानना चाहता हूँ कि जो मेरे लिये श्रेयस्कर है वही आप मेरे प्रति उपदेश कीजिये ।

इसी प्रकार अपनी मनोदशा का कथन भक्त श्रेष्ठ हनुमान ने अपने स्वामी रामचंद्रजी से अपनें जन्म–मरण के बन्धन से मुक्त होने, एवं शोक–मोह के सागर से पार होने के लिये प्रार्थना की ।

दास हनुमान की प्रार्थना सुन उसके कल्याण हेतु श्रीरामजी ने स्वयंराज्य कार्य में व्यस्थ होने के कारण श्रीसीताजी को हनुमान के प्रति कल्याणर्थ उपदेश करने का आदेश दिया । उसी प्रसंग को यहां सीता–गीता के नाम से प्रकाशित किया जा रहा है ।

गीता का अर्थ उस संवाद से है, जो पद्य अथवा गद्य रूप में जीव को देह से भिन्न ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान को गाकर या सुनाकर बताया है । इस प्रकार से उद्धव गीता, अर्जुन गीता, राम गीता, शिव गीता, अवधूत गीता, पाण्डव गीता, अष्टावक्र गीता, देवी गीता, उत्तर गीता, गुप्त गीता आदि अनेक गीताएं हैं जिसमें जीव ब्रह्म की एकता दर्शाई गई है । गतथा मन,

बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण, शरीर जगत् लेकर से ब्रह्मादिको के लोक तक को नश्वर दुःखरूप बताकर जीव के वैराग्य भाव जाग्रत कराया गया है ।

श्री हनुमान को सदगुरु सीताजी द्वारा जो उपदेश प्राप्त हुआ उसका वर्णन, ''अध्वात्म रामयण प्रथम सर्ग ''राम हृदय'' के अन्तर्गत संस्कृत भाषा में है । जिज्ञासुओं को उस परमगुप्त रामहृदय का अनुभव कराने के लिये सरल हिन्दी भाषा में नाना शास्त्र प्रमाण एवं द्रष्टान्तों द्वारा यहाॅ सुन्दर विचार माला के रूप में तैयार किया गया है । जिसको श्रद्धालु अधिकारी श्रवण, मनन एवं धारणा-ध्यान द्वारा अपना कर अपने को हनुमानवत् धन्य कर सकेंगे ।

इस ग्रन्थ को किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु द्वारा ही श्रवण मनन करेंगेतो सद्यो मोक्ष अर्थात् इसी जीवन में ज्ञान करते ही मोक्ष की अनुभूति हो जावेगी । यदि अपनी बुद्धि से श्रद्धा पूर्वक पढकर मनन किया तो परोक्ष ज्ञानी होकर वह उत्तमगति को प्राप्त कर सकेगा ।

प्राप्त पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।

– गीता : ६/४१

अर्थात् योगभ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों में जाकर उनमें बहुत वर्षतक रहकर फिर शुद्ध आचरण वाले श्रीमान् पुरुषों के घर में जन्म लेता है ।

अथवा योगीनामेव कुले भवति धीमताम् ।
एदद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीद्दशम् ।।

गीता : ६/४२

अथवा वैराग्यवान पुरुष उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान योगीयों के कुल में जन्म लेता है । परन्तु इस प्रकार का जन्म संसार में अत्यन्त दुर्लभ है । अगले जन्म में किसी ज्ञानी कुल मे जन्म ग्रहण करेगा इस में किंचित

भी सन्देह नहीं है । किन्तु उसकी अधोगति तो कभी नहीं हो सकेगी । क्योंकि कोई भी शुभेच्छा करने वाला व्यक्ति दुर्गति को प्राप्त नहीं होता है ।

नेहाभिक्रमनाशोढऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ।।

–गीता : २/४०

यह आत्म जिज्ञासा ही शुभेच्छा है, जो करोड़ों–करोड़ों पूर्व जन्म में शुद्ध हुए मन में ही उदय होती है ।

बहुनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ।।

गीता : ७/१९

एवं एक बार शुभेच्छा उदय हो जाने पर उसे मोक्ष की प्राप्ति निःसन्देह ही प्रतिबन्ध के हटते ही हो जावागी ।

स्वामी निरंजन

महादेवजी का उपदेश

श्री महादेवजी ने भक्ति मान पार्वतीके जिज्ञासा युक्त श्रीराम तत्त्व की बात सुन प्रसन्न हुए और कहा–हे देवी ! तुम धन्य हो, तुम परमात्मा की परम भक्त हो जो तुम्हें राम तत्त्व जानने को तीव्र इच्छा जाग्रत हुई ।

हे पार्बती परमब्रह्म राम तो निर्गुण निराकार ही है किन्तु जगत् का कल्याण के लिये उन्होंने माया को आश्रय कर अपना सगुण साकार रूप धारण किया व नाना प्रकार की लीलएँ की जो मानव बुद्धि के समझ से बाहर है ।

एक राम दशरथ का बेटा एक राम घट घट में बैठा ।
घट घट में बैठा वही है राम दशरथ पुत्र नहीं है राम ।

श्रीराम निःसन्देह प्रकृति के गुण प्रवाह सें अति परे सबके हृदय में साक्षी रूप में नित्य विराजमान हैं । जो अनादि सत्तारूप से सर्वत्र विद्यमान हैं । यही उनका सत्य अविनाशी स्वरूप है ।

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्यों

– गीता : १५/१५

मैं ही सब प्राणीयों के हृदय में अर्न्तयामी रूप से विद्यमान हूँ ।

'हृदि सर्वस्य विष्ठितम' –गीता : १३/१७

सवके हृदय में विषेशरूप से स्थित है ।

'इश्वरः सर्वभूतानां हृद्यसेऽर्जुन तिष्ठति'

– गीता : १८/६७

सव प्राणीयों के हृदय में स्थित है ।

'प्रकृति पार सब उर पुर वासी' (रामायण)

राम उमा सब अन्तर्यामी

रम अनन्त सच्चिदानन्द घन अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो आकाशवत् बाहर-भीतर चराचर में विद्यमान हैं तथा जो सबके अन्तः में स्थित हुए अपनी योगमाया से इस विश्व को परिचालित करते हैं । अज्ञानी आत्मा-अनात्मा के ज्ञान से रहित मूढ बुद्धि वाले होते हैं । जिसका हृदय आत्मा के अज्ञान से ढका हुआ है ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मुढोऽयं नाभिचानाति लोको मामजमव्ययम् ।।

– गीता : ७/२५

अपनी नाम, रूप योग माया से छिपा हुआ मैं सबके प्रत्यक्ष नहीं होता, इसलिये यह अज्ञानी जन समुदाय मुझ जन्मरहित अविनाशी परमेश्वर को नहीं जानते, प्रत्युत जन्मने वाला जानते हैं । और जन्मने वाले की मृत्यु भी निश्चित होती है ।

'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु र्ध्रुवं जन्म मृतस्य च' – गीता २/२७

वे मूढ़जन राम के अनादि, अनन्त, अखंड, असंग, अद्वय, सनातन स्वरूप को नहीं जानते हैं । वे मूढजन मायातीत परमात्मा में माया के कार्यों का मिथ्या आरोपण करते हैं, अर्थात उन्हें भी अपने समान ही अज्ञानी शोक-मोह, काम-क्रोधादि गुण युक्त मानते हैं । एवं स्वयं अज्ञान में फंसकर संसार चक्र में पड़े दुःख पाते रहते हैं ।

जीव सुख की चाह तो रखते हैं किन्तु सुखदायी संत, सत्संग, एवं आत्मा से प्रीति नहीं करते हैं और वे दुःख से तो छूटना चाहते हैं, किन्तु

दुःखदायी स्त्री, पुत्र, पति, धन, मकान, पद यश से दूर होना नहीं चाहते हैं । जैसे कोई अज्ञानी अपने गले में पहनी हुई कण्ठी को न जान बाहर ढूढंने की तरह अज्ञानी अपने हृदय स्थित परमात्मा को आत्मा रूप न जान उसे नदी, तीर्थ, मन्दीर, सूर्य, चन्द्र, वट, पीपल,तुलसी आदि बाह्य क्षेत्रों में खोजते हुए कष्ट पाते हैं ।

पाषाण लोह मणिमृण्मय विग्रहेषु पूजा पुनर्जनन भोगकारी मुमुक्षोः ।
तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात् बाह्यचार्चनं परिहरेद पुनर्भवाय ।।

–२/२६–मैत्रेयूपनिषद्

पत्थर, सोना, चाँदी, लकड़ी, मिट्टी आदि धातु द्वारा बनाई मूर्तियों की पूजा मोक्ष की इच्छा करने वालों को फिर से जन्म एवं भोग प्राप्त करने वाली होती है । इसलिये फिरसे जन्म न लेना पड़े इस उद्देश्य से संन्यासी को ऐसी बाहरी पूजा को त्यागकर हृदय में ही आत्मा की सोऽहम् भाव द्वारा पूजा करनी चाहिये ।

आत्मतीर्थ समुत्सृज्य बाहिरतीर्थानि योव्रजेत् ।
करस्थं समहारत्नं यक्तत्वा काचं विमार्गते ।।

–४/५०–जावालदर्शन उपनिषद

कल्याण स्वरूप परमात्मा इस देह मन्दिर में विराजमान हैं । उसे न जानने वाला मूर्ख साधक परमात्मा को तीर्थ, मन्दिर, दान, जप, यज्ञ, काष्ठ और पाषाणादि में ही खोजता फिरता है ।

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमामुनयोगिनाः ।
अज्ञानां भावनार्थय प्रतिमाः परिकल्पितः ।।

–४/५१–जावालदर्शन उपनिषद

ज्ञानी जन तो परमात्मा के दशर्न अपनी आत्मा में ही सोऽहम् भावन द्वारा करते हैं । प्रतिमाओं में कभी नहीं । प्रतिमाओं की कल्पना तो अज्ञानी जनों के हृदय में भगवान के प्रतिभावना जागृत हो जाने के लिये की गई है ।

देहो देवालयः प्रोक्त स जीवः केवलः शिवः ।
त्यजेदज्ञाननिर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत ।।१० ।।

–स्कन्दोपनिषद

यह देह को ही वास्तविक मन्दिर (देवालय) समझना चाहिये । उसमे जीव ही शिव रूप हे । अज्ञान रूप निर्माल्य को दूर करके वही शिव 'मैं हूँ', 'सोऽहम्' इस भावना द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ।

जैसे मृग कसतूरी को अपनी नाभि में न जानकर उस सुगन्ध को किसी बाहरी पदार्थ की जान खोज करता हुआ अज्ञान वश कष्ट पाता रहता है । उसी प्रकार मूढजन परमात्मा को अपने आत्मा स्वरूप न जान बाहर ही खोजते रहते हैं । जब किसी जीव को सद्‌गुरु की कृपा दृष्टि प्राप्त होती है, तब वह परमात्मा को आत्मरूप जान परमानन्द को प्राप्त होता है ।

हे पार्वती ! जैसे सूर्य में कभी अन्धकार नहीं होता है, उसी प्रकार परमब्रह्म राम में अविद्या अज्ञान नहीं होता है । इसी प्रकार अज्ञानी लोग अपने देह, इन्द्रिय और मन रूप कर्ताके किये हुए कर्मों का अपने आत्मा में आरोप करके मोहित हो जाते हैं । जबकी आत्मा, देह, प्राण, मन एबं जीव के सभी कर्म, धर्म से असंग ही रहता है ।

नाहं देहो जन्म मृत्यु कुतो मे, नाहं प्राणः क्षुत्पिपासे कुतो मे ।
नाहं चेतः शोक मोहो कुतो मे, नाहं कर्ता बन्ध मोक्षो कुतो मे ।।६ ।।

– सर्वसरोपनिषद्

मैं देह नहीं हूँ फिर मुझे जन्म–मृत्यु कहाँ से हो ? मैं प्राण नहीं हूँ फिर मुझे भूख–प्यास कैसा लगे ? मैं मन नहीं हूँ तो फिर मुझे शोक मोह कैसे हो सकते हैं ? मैं कर्ता भोक्ता जीव नहीं हूँ तो फिर मुझे बन्ध मोक्ष भ्रान्ति कैसे हो सकेगी ? अतः बन्ध–मोक्ष भी मुझे नहीं है ।

हे पार्वती ! इस विषय में मैं तुम्हें सीता द्वारा हनुमान के मोक्ष का साधन रूप संवाद को सुनाता हूँ जो अत्यन्त गोपनीय एवं परम दुर्लभ है ।

श्रीहनुमान की जिज्ञासा

पूर्व काल में त्रेतायुग के समय जब क्षत्रिय जाति शिरोमणी दशरथ पुत्र श्री रामचन्द्रजी अवतरित हुए थे । उन्होंने देवताओं के कण्टक रूप रावण एवं उसके पुत्र मेघनाद को हित युद्ध में परास्त कर राम-लक्ष्मण सीता सहित अयोध्यापुरी में आये । राज्याभिषेक होने पर सेवा कार्य से पूर्ण मुक्त वैराग्यवान् महामति भक्त हनुमान ने श्रीरामजी से अपने जन्म-मरण के बन्धन को काटने केलिये हाथ जोड़ प्रार्थना की हे प्रभो ! आपका यह दास शोक मो के सागर में डूबा हुआ असहनीय दुःख पा रहा है । हे नाथ ! आप कृपा कर मेरा कल्याण जीस प्रकार हो वह उपदेश करने की कृपा करे । तब श्रीरामचन्द्रजी ने सीताजी से कहा - "हे सीता ! यह हनुमान हम दोनों में अत्यनत भक्ति रखता है इसलिए यह निष्पाप है और ज्ञान का सुयोग्य पात्र है । अतः तुम इसे परमब्रह्म राम तत्त्व का सदोपदेश करो" तब सीताजी ने 'बहुत अच्छा' कह शरणागत हनुमान को परमब्रह्म राम का जो निश्चित तत्त्व कहा उस संवाद को यहाँ **'सीता गीता'** के नाम से प्रसिद्ध किया जाता है । जैसे श्रीरामचन्द्रजी द्वारा लक्ष्मण को उपदेश प्राप्त हुआ उसे 'रामगीता' नाम से ख्याति प्राप्त हुई है ।

(१ - ३१२ लोकों का साराशं)

श्रीसीताजी के द्वारा उपदेश

हे वत्स हनुमान !

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम् ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम ।। ३२ ।।

–अध्यात्मरामायण

तुम राम को साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परमब्रह्म समझो, ये निःसन्देह समस्त उपाधियों से रहित, सत्तामात्र मन तथा इन्द्रियों के अविषय, आनन्दघन, निर्मल, शान्त, निर्विकार निरन्जन, सर्व व्यापक, स्वयं प्रकाश और निष्पाप परमात्मा है ।

हे प्रिय हनुमान ! परब्रह्म राम का पूर्ण रहस्य तो कोई भी नहीं जान सकता क्योंकि वे मन, वाणी, बुद्धि से परे हैं ।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छतिनोमनो न विक्षो न विजानीमो ।

केन उप.

सर्वाधिष्ठान सर्वप्रकाशक स्वयंप्रकाश ब्रह्म नेत्र नहीं देख नाते, वाणी उसका वर्णन नहीं करपाती, और मन के द्वारा भी वह नहीं जाना जाता।

यद्वाचाऽनभ्युदितं येन भावगभ्युद्दते ।४। केन उप.

इस हृदय स्थित सत्ता स्वरूप ब्रह्म को वाणी द्वारा कहा नहीं जा सकता, किन्तु इसी ब्रह्म की सत्ता से वाणी प्रकाशित होती हैं ।

यन्मनसा न मनुते येनाऽऽहुर्मनो मतम् ।५ । केन उप.

इस बुद्धि के साक्षी परमात्मा को मन द्वारा मनन नहीं किया जासकता, किन्तु इसी ब्रह्म सत्ता द्वारा मन मनन करने में समर्थ होता है ।

चच्चक्षुषा न पश्यति येन् चक्षुंषि पश्यति ।६ । केन उप.

इस आत्म ब्रह्म को नेत्र द्वारा नहीं देखा जा सकता, किन्तु इसी द्रष्टा आत्मा द्वारा नेत्र देखे जाते हैं ।

यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् । ७ । केन उप.

इस सर्व साक्षी परमात्मा को कानों द्वारा नहीं सुना जासकता है किन्तु जो श्रोत्रेन्द्रिय के सुनने, न सुनने तथा कम सुनने को भी सुनता है अर्थात् जानता है ।

यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।८। केन. उप.

इसे प्राण नहीं चला सकता किन्तु जो प्राणों को प्राण न कराता है ।

तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।।

उसी को तुम ब्रह्म जानो । संसारी लोग जिस देश, काल, वस्तु परिच्छिन्न वस्तु का उपासना करते हैं वह चित्र, मूर्ति व्यक्ति ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः । १५/६ गीता

उस इस स्वयंप्रकाश परमात्मा को न सूर्य प्रकाशित कर सकता है, न चन्द्रमा और न अग्नि ही ।

बुद्धि का देवता सूर्य, मन का देवता चन्द्रमा तथा वाणी का देवता अग्नि है जब इस तीनों देवताओं की परमात्मा तक पहुँचने की सामर्थ्य नहीं तब उन्हीं देवताओं के कार्य रूप बुद्धि, मन तथा वाणी परमात्मा को कैसे प्रकाशित कर सकेगी ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति

छा. उप. ६/१४, कठो. २/२/१५

जो सबको जानने वाले, प्रकाशित करने वाले हैं, उस अद्वितीय, अखंड, स्वयंप्रकाश, स्वयंसिद्ध तत्त्व को मन, वाणी नहीं जान सकते, बल्कि उनकी शक्ति पाकर यह समस्त लोक, सूर्य, चन्द्र, विद्युत्, तारागण, भूतप्राणी, देह, प्राण, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण प्रकाशित होते हैं एवं अपना-अपना कार्य करते हैं ।

'राम अतर्क्य बुद्धि मन वाणी'

मैं उपरोक्त चौदह त्रिपुटियों के भावाभाव का प्रकाशक असंग, अखण्ड, एकरस, साक्षी, आत्मा हूँ ।
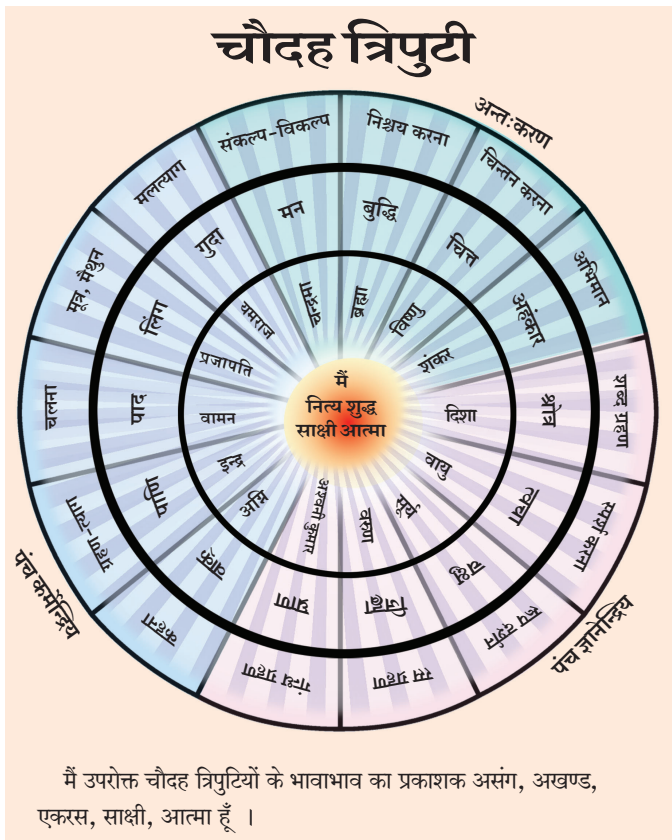
तात राम नहि नर भूपाला, भुवनेश्वर कालहुं करि काला ।

हे प्रिय ! राम कोई राजा का पुत्र या केवल मनुष्य मात्र नहीं है, वह तो चौदह त्रिपुटियों को प्रकाशित करने वाला है ।

अहंकार शिव बुद्धि अज, मन शशी चित महान ।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ।।

जिनके अन्तःकरण में अहंकार ही शिव है, मन ही चन्द्रमा है, बुद्धि ही ब्रह्मा है एवं चित्त ही जिनका विष्णु है, वही राम चराचर के प्राणियों में आत्मरूप साक्षी हुए विराज मान हैं । हे हनुमान ! वह परमात्मा हृदय को चीर दृश्य पुतली की तरह देखने दिखाने की वस्तु नहीं है । अस्तुः उन्हें कोई भी इन चर्म चक्षु द्वारा देख नहीं सकता ।

विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः

हे प्रिय वत्स हनुमान ! परब्रह्म राम का वास्तविक स्वरूप तो निर्गुण निराकार ही है । वेद मैं उनका स्वरूप लक्षण इस प्रकार बतलाया है :-

अपाणि पादो जवनो ग्रहीता
पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति वेता
तमाहुरग्रयं पुरुष महान्तम ।।

३/१९. श्वेताश्वतर उप.

अर्थात परमात्मा स्वयं निराकार है, उनका अपना कोई शरीर विशेष नहीं है । इसलिये निरवयव होने से उनके मनुष्यवत हाथ, पैर, आँख, कानादि इन्द्रियॉ नहीं है किन्तु फिर भी उन्हीं की शक्ति का अंश पाकर सभी जीवों के हाथ पैर, आँख, कानादि समस्त इन्द्रियों की क्रियाएं हो रही है ।

सर्वतः पाणि पादं तत्सर्वतोऽक्षिर्तशरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। १६ ।।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वन्द्रिय विवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं ब्रहत् ।। १७ ।।

३/१६, १७ श्वेता. उप.

यह आत्मदेव सबका ईश्वर शासक है; सभी आत्मदेव के अनुशासन में है; सबको उनकी एकान्तिक शरणागति करना चाहिये । वे सबसे श्रेष्ठ पुरुषोत्तम एवं महानतम है ।

इस आनन्दघन अन्तर्यामी परमात्मा की शक्ति से ही इस जगत् के सभी प्राणी अपनी-अपनी चेष्टाएं करते हैं । उनके शासन में रहने वाले सूर्य चन्द्र पवन, जल, पृथ्वी आदि सभी भूत अपना-अपना काम करते है । यदि इन सूर्य, चन्द्र, पवन, जल, पृथ्वी आदि प्रकृति को शक्ति न मिले तो यह अपना कार्य कुछ भी नहीं कर सकेंगे और इनके कार्य के अभाव में कोई भी प्राणी जीवित नहीं रह सकेंगे ।

बिनु पद चलइ सुनइ बिनु काना,
कर बिनु कर्म करई विधि नाना ।
आनन रहित सक्कल रस भोगी,
बिन वाणी वकत्ता बड़ जोगी ।
तन बिनु परस नयन बिनु देखा,
ग्रहई घ्राण बिनु बास असेषा ।
असि सब भांति अलौकिक करनी,
महिमा जासु जाई नहि बरनी ।

हे हनुमान ! परब्रह्म राम निराकार, अखंड एवं असंग होने से उनका कोई भी सजातीय, विजातीय एवं स्वगत सम्बन्ध नहीं है । उनका किसी प्रकार किसी काल में नाश नहीं होने से वे अविनाशी, सत स्वरूप हैं । सब कालों को जानते है इसलिये वे सर्वज्ञ (चित) हैं । सब काल प्रिय होने से आनन्द स्वरूप है तथा एक होने अद्वितीय है । नाम रूप उपाधि

सच्चिदानन्द ब्रह्म को जानने के बाह्य लक्षण हैं । नाम रूप माया अंश होने से ब्रह्मा रूप नहीं है । वे इन्द्रियों के प्रकाशक, इन्द्रियों के परे होने से अगोचर (अप्रमेय) कहे जाते हैं ।

मति न लखे जेहि मति को लखे सो मैं शुद्ध अपार ।

मन, वाणी जिसे नहीं जान सकते किन्तु जो मन वाणी को जानता है, वह ब्रह्म राम परमार्थ स्वरूप है ।

राम सच्चिदानन्द दिनेषा, नहीं तहँ मोह निशा लवलेशा ।

'ज्ञान मान जहँ एकउ नाहीं'

देह संघात से भिन्न होने के कारण निराकार निरअवयव है । किन्तु इन्हीं की शक्ति से जड़ माया चेतन की तरह भास रही है ।

जासु सत्यता से जड़ माया,
भास सत्य इव मोह सहाया ।
आदि अंत कोउ जासु न पावा,
मति अनुमानि निगम अस गावा ।
राम सो परमात्मा भवानी,
तह भ्रम अति अविहित तव बानी ।
सो सुखधाम राम अस नामा,
अखिल लोक दायक विश्रामा ।
वयापक ब्रहा अलख अविनाशी,
चिदानन्द निरगुण गुणराशि ।

जो चेतन कहँ जड़ करहि, जड़हि करई चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहिं, भजहि जीव ते धन्य ।

राम ब्रह्म व्यापक जग जाना,
परमानन्द परेश पुराना ।
मन समेत जेहि जान न बानी,

तरकि न सकहि सकल अनुमानी ।
एक अनीह अरूप अनामा,
अज सच्चिदानन्द परधामा ।
जगत् प्रकाश्य प्रकाशक रामु,
मायाधीश ज्ञान गुण धामु ।
सहज प्रकाश रूप भगवाना,
नहिं तहँ पुनि विग्यान विहाना ।
सब कर परम प्रकाशक जोई,
राम अनादि अवधपति सोई ।
राम अर्तक्य बुद्धि मन वाणी,
मत हमार अस सुनहुं सयानी ।
अस प्रभु छाड़ि भजहि जे आन,
ते नर पशु बिन पूंछ विशाना ।

– रामायण

हे हनुमान ! इस प्रकार परब्रह्म राम सबके अर्न्तयामी, हृदय के साक्षी, प्राणपति, अविनाशी, सच्चिदानन्द, स्वयंप्रकाश, सर्व प्रकाशक, स्वयंसिद्ध अद्वितीय, निराकार, समस्त उपाधियों से रहित मन वाणी से परे हैं ।

हे वीर हनुमान ! जब जीव के जन्म - जन्म के शुभ कर्मों का फलोदय होता है तब आत्मनिष्ठ कोई श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की प्राप्ति होती है एवं उनके द्वारा जब सत्संग प्राप्त होता है, तब सत्यानुभूति स्वात्मा रूप में होती है ।

हे हनुमान ! जहाँ दो मिली हुई वस्तु में से सार-असार, सत्य-असत्य, जड़-चेतन, आत्मा-अनात्मा, दृश्य-द्रष्टा, शिव-शब, अधिष्ठान-अध्यस्त, स्वयंप्रकाश-परप्रकाश्य इत्यादि का स्पष्ट बोध हो जाता है, उसी का नाम विवेक है ।

बिनु सत्संग विवेक न होई ।
राम कृपा बिन सुलभ न सोई ।।

- रामायण

जब इस प्रकार का सत्संग मुमुक्षु की तीव्र उत्कंठा से प्राप्त होता है, तब उसे प्राप्त भौतिक विषय भोग एवं प्राप्तव्य ब्रह्मादिक लोक एवं वहाँ के भोगों की नश्वरता एवं दुःख-रूपता का बोध हो जाने से उन समस्त लोक एवं भोगों में ग्लानी हो जाने का नाम ही वैराग्य है ।

कहहि तात सो परम बैरागी ।
त्रण सम सिद्धि तीन गुण त्यागी ।। -रामायण

हे हनुमान ! जिस सत्ता का कभी किसी प्रकार, किसी से नाश न हो उस त्रिकालाबाधित वस्तु आत्मा को ही सत्य जानो । इसे ही पारमार्थिक सत्ता भी पहते हैं ।

नासतो विद्यते भावो ना भावो विद्यते सतः

-गीता : २/१६

जिसका जन्म-मरण, संयोग-वियोग, भाव-अभाव उदय-अस्त हो, जो सदा एकसा न रहे एवं साधन द्वारा प्राप्त हो, ऐसे व्यावहारिक सत्ता वाले पदार्थ को मिथ्या कहते हैं । जैसे-जगत्, शरीर, मकान, राम कृष्णादि के शरीर व मन्दिर, मूर्ति, चित्र । हे हनुमान ! जब सद्‌गुरु द्वारा अद्वितीय ब्रह्मज्ञान हो जाता है तब यहाँ ब्रह्म से भिन्न किंचित् अन्य भासित नहीं होता । तभी इस जगत् की सत्ता का अभाव निश्चय होता है ।

किन्तु हे हनुमान ! जिसकी केवल प्रतीति मात्र होती है, जिसका केवल नाम मात्र है, उसे असत ही जानो । जिस सत्ता का बिना ब्रह्मज्ञान किये केवल उसके कारण की निवृत्ति होने से ही अभाव रूप ज्ञात हो जाता है, उसे प्रातिभासिक सत्ता भी कहते हैं । जैसे-सीप में चाँदी, मरुस्थल में जल, रस्सी में सर्प, गन्धर्व नगर, कटे वृक्ष में भूत एवं साक्षी में स्वप्न नगर आदि ।

हे हनुमान ! परब्रह्म राम– तो अखंड, असंग, सच्चिदानन्दघन सबके आत्मा हैं, उन्हें दशरथ पुत्र राम, वासुदेव पुत्र कृष्ण की तरह जड़ नश्वर शरीर रूप मत जानो ।

जिस सत्ता का सब देश, काल तथा वस्तु रूप में अभाव न हो उसे ही अखंड कहते हैं । जो वस्तु किसी एक देश, एक काल तथा एक रूप हो वह व्यापक परब्रह्म राम नहीं है । जो सत्ता किसी एक देश, एक काल तथा एक वस्तु रूप में विद्यमान रहती है वह परिच्छिन्न वस्तु अखंड नहीं है, इसलिये वह परब्रह्म भी नहीं है । उसे माया विशिष्ट चैतन्य (ब्रह्म) कह सकेंगे ।

हे हनुमान ! जो सत्ता अपने में सजातीय, विजातीय तथा स्वगत भेद नहीं रखती है, उसे ही असंग कहते हैं । जैसे–मनुष्य का सजातीय मनुष्य है, मनुष्य–वृक्ष का विजातीय एवं वृक्ष का तना, डाल, टहनी, पत्ते, फूल तथा फल या मनुष्य के पैर, हाथ, मुख, नाक, कान का स्वगत सम्बन्ध कहलाता है । दशरथ पुत्र राम का अयोध्या देश था, उनके सजातीय जाति, बन्धु, परिवार था तथा उनका एक शरीर था । अतः तीनों सम्बन्ध जिसमें है, वह परब्रह्म राम नहीं हो सकता ।

जो अन्य को एवं स्वयं को नहीं जानता है उसे ही जड़, परप्रकाश्य एवं साक्ष्य कहते हैं । किन्तु जो सबको जानता है उसे चैतन्य,स्वपंप्रकाश एवं साक्षी कहते हैं । जैसे जीवों का साक्षी आत्मा ।

परम प्रकाश रूप दिन राती ।
नहि चाहिये दियाघ्रत बाती ।।

सब पर परम प्रकाशक जोई ।
राम अनादि अवधपित सोई ।।

जो शस्त्र से कट जावे, अग्नि से जल जावे, पानी में भीग जावे, पवन में सुख जावे ऐसे लक्षण वाले शरीर को अनात्मा जानो; किन्तु जो

शस्त्र द्वारा कट न सके, अग्नि द्वारा जल न सके, पानी द्वारा भीग न सके तथा पवन द्वारा सुख न सके, उसे आत्मा कहते हैं ।

जिसका न कभी प्रारम्भ काल है और न अन्त-काल है, ऐसे आत्मराम को ही अनादि-अनन्त कहते है । जिसका आदि (प्रारम्भ) है उसका अन्त भी निश्चित जानो । कोई भी जन्मने वाला शरीर से अमर नहीं रह सकता है । जैसे राम, कृष्णादि ।

समस्त दृश्य जो दिखाई पड़ते हैं, उसे जड़ एवं नश्वर जानो एवं समस्त भीतर-बाहर के ज्ञाता को ही एक मात्र द्रष्टा जानो ।

'जग पेखन तुम देखन हारे'

हे हनुमान ! समस्त नाम-रूप प्रपंच जगत् को मिथ्या अध्यास जानो एवं इन सबके आधार रूप मूल वस्तु ब्रह्म-राम को ही अधिष्ठान जानो ।

अथातो ब्रह्म जिज्ञासा

(१ ब्रह्मसुत्र)

हे हनुमान ! जब साधक सद्गुरु के समीप आत्म कल्याण की जिज्ञासा उदय होने पर जाता है, तब उसका साधन चतुष्टय सम्पत्र होना अधिकारी परमावश्यक है ।

विवेक, वैराग्य, षट सम्पत्ति (शम, दम, श्रद्धा, तितिक्षा, उपरामता, समाधानता) तथा मुमुक्षता इन चार साधनों को को ही साधन चतुष्टय कहते हैं ।

जब विवेक वैराग्य युक्त कोई मोक्षाभिलाषी जीव आत्मोपदेश ग्रहणार्थ सद्गुरु की शरण में जाता है, तब वहाँ पहुँच सर्व प्रथम उन्हें साष्टांग प्रणाम कर प्रार्थना करता है – **'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्युोर्मऽमृतम्गमय ।'** इस प्रकार शम करता है, साथ इन्द्रियों को उनके विषय भी नहीं देकर उनकी आसक्तियों का दमन करता है । भूख–प्यास, सर्दी, मान–अपमान आदि विघ्नों की तितिक्षा रखते हुए लक्ष की ओर बढता जाता है तथा सद्गुरु के वचनों में एवं उनके द्वारा सुनाये सत शास्त्रों में अपने कल्याण का पूर्ण विश्वास रूप श्रद्धा करता है । अभ्यास काल में इन्द्रियों के भोगो में आसक्ति नहीं रखता है । उसके मन

में विषय भोगों में ग्लानि होने के कारण मन भोगों से उपराम हो जाता है । इस प्रकार शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरामता, समाधानता लिये मोक्ष-अभिलाषी-मुमुक्षु को सद्गुरु से एकाग्रता पूर्वक वेदान्त विषय का श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन रूप साधन में जोड़ता है, तब उसके समस्त संशयों का छेदन होकर आत्म साक्षातकार हो जाता है ।

वेद में जीव-ब्रह्म की एकता लिखी है या भेद है ? ज्ञान से मुक्ति होती या कर्म, उपासना तथा योग से ? इस प्रकार के संशय को प्रमाणगत संशय कहते हैं, जो वेदान्त श्रवण से ही दूर होता है । कर्म, उपासना, योगादि साधन द्वारा नहीं ।

वेद प्रमाण से जाने जीव और ब्रह्म एकत्व में जो साधक को संशय उदय होता है कि एकता सत्य है या भेद सत्य है ? आत्मा कर्ता-भोक्ता है या अकर्ता-अभोक्ता है ? आत्मा अजन्मा-अविनाशी है, या जन्म-मृत्यु रूप ? आत्मा एक है या अनेक ? इस प्रकार के संशय को प्रमेयगत संशय कहते हैं, जो '**अहंब्रह्मास्मि**' 'मैं ब्रह्म हूँ' '**अयमात्मा ब्रह्म**' 'यह आत्मा ब्रह्म है' '**तत्त्वमसी**', 'वह तू है' आदि महावाक्यों के मनन द्वारा ही दूर होता है ।

हे बुद्धिमान हनुमान ! मैं देह हूँ ब्रह्म से भिन्न यह जगत् सत्य है, ऐसी विपरीत भावना करने वाले अस-भावना दोष वाले को वेदान्त तत्त्व का ही श्रवण, मनन और चिन्तन करना चाहिये ।

वेदों के महावाक्यों का तात्पर्य से निश्चय करना ही श्रवण कहलाता है । फिर श्रवण किये महावाक्य का अभेद की साधक एवं भेद की बाधक युक्तियों द्वारा मनन किया जाता है; तत्पश्चात आत्माकार वृत्ति का प्रवाह एवं अनात्माकार वृत्ति का तिरस्कार करना ही निदिध्यासन है ।

इस प्रकार जीव-ब्रह्म के एकत्व प्रतिपादक 'तत्त्वमसि' (वह तू है) इस महावाक्य में से जीव और ईश्वर के अविद्या तथा माया उपाधिक

विरोधी चिदाभास के धर्मों का परित्याग करके जीव का साक्षी कूटस्थ आत्मा है एवं ईश्वर का साक्षी जो शुद्ध ब्रह्म है उनमें अविरोध होने से एकत्व है । जैसे–घट–मठ उपाधि से रहित शुद्ध आकाश का एकत्व है । अस्तुः देह का अभिमान त्यागकर केवल सोऽहम्, शिवोऽहम् इस अखंड वृत्ति का अवलम्बन कर जीवन्मुक्ति का अनुभव करना चाहिये ।

सोऽहमस्मीति वृत्ति अखंडा,
दीप शिखा सोई परम प्रचंडा ।
आतम अनुभव सुख सुप्रकाशा
तव भव मूल भेद भ्रम नासा ।

–रामायण

अस्तुः हे हनुमान ! जब जीव अपने दास भाव का त्याग कर केवल एक अद्धितीय ब्रह्म सत्ता से पृथक् अन्य किंचित् भी नहीं देखता है, तभी इसका वास्तविक कल्याण अर्थात् नित्य मोक्ष हो पाता है । इस प्रकार के नित्य मोक्ष के लिये ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञान ही एकमात्र साधन है ।

हे वत्स हनुमान ! जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति यह तीन अवस्थाएँ बुद्धि की है । इनमें जीव अहंकार कर ने के कारण विश्व, तैजस तथा प्राज्ञ संज्ञा को प्राप्त होता है । जाग्रत में जीव की बैखरी वाणी, नेत्र स्थान, स्थूल भोग, रजोगुण, क्रिया शक्ति, तथा स्थूल शरीर होता है । यहॉ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा तथा घ्राण यह पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, वाक, पाणि, पाद, उपस्थ तथा गुदा यह पांच कर्मेन्द्रियाँ तथा मन, बुद्धि, चित, अहंकार (अन्तःकरण चतुष्टय) इस प्रकार आत्मा द्वारा चौदह त्रिपुटियों का जहाँ स्थूल व्यवहार चलता रहता है, उसे जाग्रत अवस्था कहते है । इसे चौदह भुवन भी कहते है ।

तात राम नहिं नर भूपाला,
भुवनेश्वर कालहुँ करि काला ।।

इन चौदह त्रिपुटियों के जो प्रकाशक है वह परब्रह्म राम है । राम कोई अयोध्या नरेश केवल मानव ही नहीं है । वे राम मृत्यु को भी मृत्यु प्रदान करने वाले हैं । इस जाग्रतावस्था का अभिमानी जीव विश्व कहलाता है ।

स्वप्नावस्था में जीव का स्थान कंठ रहता है, वहीं स्वप्न रचना का कार्य होता है । वहाँ वाणी 'मध्यमा' सुख-दुःख रूप सूक्ष्म भोग, सत्वगुण, ज्ञान शक्ति तथा स्वप्न का अभिमानी जीव तैजस कहलाता है ।

सुषुप्ति अवस्था में आनन्द एवं अज्ञान का बिना मन, इन्द्रिय तथा विषय के भोग होता है । यहाँ कारण शरीर माना जाता है । दृव्य शक्ति, तमोगुण, पश्यन्ति वाणी, हृदय स्थान तथा इसका अभिमानी जीव प्राज्ञ कहलाता है; इन्द्रियों के प्रकाशक देवता को अधिदेव कहते हैं तथा इन्द्रियों के विषयों को अधिभूत कहते है । इस प्रकार अध्यात्म, अधिदेव तथा अधिभूत के योग को त्रिपुटी कहते हैं । हे हनुमान ! तुम अपने को इन सबका प्रकाशक मात्र जानो । तीनों अवस्था का अभिमान त्याग कर केवल अपने को इनका साक्षी निश्चय करो । बस इसी निष्ठा से समस्त बन्धनों से छूट तत्काल समस्त दुःखों की निवृति एवं अखंडानन्द रूप मोक्ष प्राप्त कर सकोगे ।

हे हनुमान ! जो वस्तु स्वयं मिथ्या होकर भी सत्य वस्तु में अपना धर्म आरोपित कर दिखावे उसे स्वरूप अध्यास कहते हैं । जैसे - अन्धकार रूप चन्द्रमा, प्रकाश स्वरूप सूर्य में पराग दर्शा देता है । जो सत्य वस्तु अपना धर्म मिथ्या वस्तु में आरोपित कर दिखावे, उसे सम्बन्ध या संसर्ग अध्यास कहते है । जैसे -सूर्य अपना प्रकाश धर्म, प्रकाश रहित चन्द्रमा को प्रकाश रूप कर दिखाता है ।

इसी प्रकार ब्रह्म की सत्यता का संसर्गाध्यास ईश्वर में होने के कारण, ईश्वर सत्य लगता है एवं ईश्वर का स्वरूपाध्यास ब्रह्म पर होने से,

ब्रह्म निष्क्रिय प्रतित नहीं होता, बल्कि सृष्टि का कर्ता प्रतीत होता है, जबकि यह धर्म ईश्वर का है ।

हे अंजनी पुत्र हनुमान ! इसी प्रकार आत्मा की सत्यता का संसर्ग अध्यास जीव पर होने से,मिथ्या जीव भी सत्य भासता है, तथा मिथ्या जीव के कर्ता-भोक्ता धर्म का धर्माध्यास अर्थात् आरोप द्रष्टा, साक्षी, अकर्ता, अभोक्ता मैं आत्मा के साथ होने के कारण मैं कर्ता-भोक्ता हूँ ऐसी भ्रान्ति होती रहती है । अस्तुः जिसका जैसा धर्म है, उसको वैसा समझना ही विवेक है एवं पर धर्म में से अहंकार हटा कर स्वधर्म में ही मैं पने की बुद्धि करना श्रेयस्कर है ।

'सर्व धर्मान परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज' । १८/६६ गीता

हे हनुमान ! तू समस्त देह संघात् के धर्मोंका अहंकार छोड़ कर केवल द्रष्टा, साक्षी स्वभाव में ही अपने शुद्ध अहंकार को स्थापित कर ।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः पर धर्मो भयावहः । ३/३५ गीता

द्रष्टा, साक्षी, आत्मा भाव में बृद्धि की स्थिति, धारणा होना ीमोी का हेतु है एवं पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण तथा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार इन देह संघात् में मैं पने की बुद्धि करना ही बन्धन का हेतु है ।

हे हनुमान ! जहाँ मिथ्या वस्तु अपने मूल उपादान कारण में विकार उत्पन्न कर स्थित होती है, उसे परिणाम कहते हैं । जैसे-लकड़ी से कोयला, दूध से दही, और गेहूँ से आटा इत्यादि । परिणाम प्राप्त वस्तु फिर अपने मूल स्वरूप को किसी उपाय से प्राप्त नहीं हो सकती । जैसे-दही पुनः दूध, कोयला पुनः लकड़ी, आटा पुनः गेहूँ नहीं बन सकता है । इसी प्रकार जिन लोगों के मत में जीव, ब्रह्म का परिणाम है, वह भले कितना भी साधन क्यों न करे, किन्तु दही के पुनः दूध मूल स्वरूप में नहीं लौटने की तरह जीव ब्रह्म स्वरूपता कों नहीं पा सकेगा । जबकि सभी वेद, शास्त्र,

महात्मा जीव को ब्रह्मरूप ही बता रहे हैं ।

जहाँ मिथ्या वस्तु अपने उपादान कारण में बिना विकार लाये सिथत रहती है, उसे वस्तु का विवर्त कहते हैं । जैसे–अलंकार–स्वर्ण का, घड़ा–मिट्टी का, फर्नीचर–लकड़ी का, मशीने–लोह का, कपड़ा–सूत का और जीव ब्रह्म का विवर्त है । हे हनुमान ! याद रखो कोई भी कार्य अपने उपादान कारण से पृथक् सत्ता वाला कभी नहीं होता है, बल्कि कार्य सदा कारण स्वरूप ही होता है, भिन्न नहीं । अर्थात अलंकार स्वर्ण ही है, घड़ा मिट्टी ही है, मशीने–लोहा ही है; इसी प्रकार जीव–ब्रह्म ही है । अलंकार को स्वर्ण बनाने हेतु और घड़े को मिट्टी बनाने हेतु किसी प्रकार के साधन करने की आवश्यकता नहीं होती है । इसी प्रकार जीव को ब्रह्म स्वरूप होने के लिये किसी साधन की आवश्यकता नहीं है । वेदान्त विवर्तवाद को स्वीकारता है एवं अज्ञानी लोक परिणाम वाद को मान कर नाना साधन जीवन पर्यन्त करके भी दुःखी बने रहते है । जबकी ज्ञानी सदा अलमस्त बना विचरण करता रहता है ।

हे वीर ! जीव आर ब्रह्म को एक जानना या कार्य और कारण को एक देखना ही ज्ञान है, एवं उन्हें पृथक् मानना ही अज्ञान है ।

भक्त और भगवान का एकत्व निश्चय करना ही भक्ति एवं भक्त और भगवान में भेद देखना ही विभक्ति है ।

आत्मा और परमात्माको एक जानना ही योग है एवं आत्मा और परमात्मा को भिन्न जानना और उसे पाने का साधन करना नित्य योग वियेग देकना ही है ।

''मैं ब्रह्म हूँ' ऐसी दृढ़ निष्ठा ही आत्म साक्षात्कार, ब्रह्मात्म दर्शन है एवं प्रत्येक क्रिया का अपने को साक्षी जानना ही सहज समाधि है ।

हे वत्स हनुमान ! अब मैं तुम्हें उस अनादि, अनन्त परमब्रह्म राम के सम्बन्ध में सृष्टिकाल के सहस्य को बतलाती हूँ, जिससे तुम्हें युग–युग में आनेवाले अवतारों के जीवन काल की स्थिति का स्पष्ट बोध हो सके कि

ब्रह्माजी के एक दिन में ही राम, कृष्ण जैसे ८००० अवतारी आकर चले जाते हैं और वह परब्रह्म राम के लिये तो वेद उदघोष करता है वह अनादि अनन्त है ।

' सत्यं ज्ञानं अनन्त ब्रह्म'
आदि अन्त कोउ जासु न पावा,
मति अनुमानि निगम अस गाव ।
जद्यापि ब्रह्म अखण्ड अनन्ता,
अनुभव गम्य भजहि जोहि संता ।
महिमा निगम नेति अस कहई,
जो तिहुँकाल एक रस सहई ।

[रामायण]

ब्रह्माजी का एक दिन

हे प्रियात्म हनुमान ! यह सृष्टि का प्रवाह अनादि काल से चल रहा है, जिसमें जीवों को धर्मोपदेश करने, नीति मार्ग पर चलाने, दुराचारिता, दुर्नीति को समाप्त करने तथा साधु पुरुषों का उद्धार करने हेतु युग-युग में सगुण साकार राम-कृष्ण आदि का अवतार होता है ।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानम धर्मस्य धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।

परित्राणाय साधूनां विनाशया च दृष्कृताम ।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ।।

हे वीर हनुमान ! यदि एक ही अवतार सम्पूर्ण सृष्टि के लिये कल्याणकारी हो जाता तो इतने अवतारों की आवश्यकता भी नहीं होती, किन्तु प्रति युग में एक अवतार समष्टि जीवों के लिये तथा अनेकों अवतार व्यष्टि कल्याण अर्थ होते है, जिन्हें अंशावतार भी कहते हैं । जैसे-नृसिंह

अवतार-हिरण्यकश्यपु के लिये, वामन अवतार-राजा बलि के लिये, अम्बरावतार-द्रोपदी के लिये, किन्तु राम, कृष्णादि नैमित्तिक अवतार जाति समुह के लिये अवतरित हुए थे ।

एक अवतार के कार्य काल एक युग के ही अन्तर्गत होता है । दूससे युग में पुनः दूसरा अवतार हो जाता है ।

‘ सम्भवामि युगे युगे ’

जिज्ञासुओं के कल्याणार्थ यहाँ यह बात कहीं जा रही है कि एक अवतार का उस युग के पश्चात उतना ही प्रभाव रह जाता है, जितना कि सर्प के कैचुली से निकल जाने पर कोई चाहे कैचुली की पूजा करे या जला डाले, वह सर्प उस त्याग की गई कैचुली में आसक्त नहीं होने के कारण कैचुली के प्रति किये गये व्यवहार को वह सर्प अपने प्रति अनुकूल या प्रतिकूल रूप में ग्रहण नहीं करता है । इसलिए सर्प का ओर से किसी प्रकार का कैचुली के प्रति हुए व्यवहार से कर्ता को फल नहीं दिलाता है । ईसी प्रकार हे हनुमान ! इन अवतार के चले जाने के बाद पूर्व अवतार की आराधना का उसे सर्प के द्वारा त्याग की गई कैचुली वत् गत अवतार द्वारा कोई फल प्राप्त नहीं होता है । यदि उस अवतार के जाने के बाद भी कालान्तर में उनके नाम, रूप में शक्ति का प्रभाव रहता तो दूसरे अवतार की आवश्यकता भी नहीं होती ।

हे हनुमान ! तुम अपने लिये ही न भावना न करना न अपने युग के प्रति । हर युग में प्राणी एक जैसे प्रकृति के ही रहते हैं । यदि सतयुग, त्रेता और द्वापरादि में पापी, चोर, हत्यारे, व्यभिचारी, लोभी, क्रोधी, कामी न होते तो इतने अवतार एवं शास्त्रों की रचना पूर्व काल में ही क्यों देखने को मिलती है ? अर्थात् पहले भी यह सब अधर्म एवं पापाचार अवश्य हो रहा था, जैसा आज हो रहा है ।

हे हनुमान ! इस सृष्टि में ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष की मानी जाती है । उसमें उसके जीवन काल के एक दिन को १००० चतुर्युग (१ महायुग)

अवधि वाला एवं १००० चतुर्युग को ही रात्री मानी जाती है । इस प्रकार १०००x ४ x २ = ८००० युगों के बीत जाने पर ब्रह्माजी के जीवन का एक दिन–रात्रि व्यतीत हो पाता है ।

सहस्त्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्त्रान्तां तेऽहोराविदो जनाः ।। – गीता ८/१७

सत, त्रेता, द्वापर तथा कलियुग मिलकर चतुर्युग या महायुग कहलाता है । इसमें सतयुग १७, २८, ००० वर्ष, त्रेता युग १२, ९६, ००० वर्ष, द्वापर युग ८, ६४, ००० वर्ष तथा कलयुग ४, ३२, ००० वर्ष की अवधि वाला है ।

इस प्रकार ४३, २०, ००० वर्षों में एक चतुर्युग पूर्ण होता है और २००० चतुर्युग याने ८००० युग बह्माजी के एक दिन में बीत जाते हैं अर्थात् ब्रह्माजी के शासन काल में ८००० पृथ्वी से राजा या मंत्रीवत् अवतार लेकर चले जाते हैं तब ब्रह्माजी का दूसरा प्रातःकाल होता है । उसमें ८००१वॉ अवतार होता है । इस प्रकार ब्रह्माजी का तीस दिन का महिना ८०००x ३०= २, ४०, ००० युग और इस प्रकार १२ महिने में २८, ८०, ००० युग व्यतीत हो जाता है । इस प्रकार ब्रह्मा की आयु १०० वर्ष की है । इस प्रकार ब्रह्मा का जीवन काल, विष्णु के जीवन काल का एक दिन के तुल्य है । उन विष्णु की आयु १०० वर्ष की है । वह शंकर का एक दिन है । फिर उन शंकर की आयु सौ वर्ष है । जिसकी श्वाँस–प्रश्वाँस में इस प्रकार के दीर्घ काल वाले असंख्य ब्रह्मा, विष्णु तथा शंकरादि देव उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं । हे हनुमान ! वह परब्रह्म राम है वही तुम हो । तुम जो यह दशरथ पुत्र राम को देख रहे हो उसे अनादि राम के समक्ष इस प्रकार जानों जैसे जल पात्र में सूर्य का प्रतिबिम्ब ।

हे हनुमान ! उस अनादि राम के संकल्प मात्र से यह सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय हो रहा है । वह ब्रह्म आत्माराम है तथा वह तू स्वयं ही है (तत्त्वमसि)

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
मयि सर्व लयं याति तद ब्रह्माद्वयमस्म्यहम ।।

कैवल्योपनिषद १९

विश्व रूप रघुबंस मनि, करहुँ बचन बिश्वासु ।
लोक कल्पना वेद कर, अंग अंग प्रति जासु ।। रामायण

हे हनुमान ! मेरे वचनों पर विश्वास करो और उन अनादि राम को विश्वरूप जानों । अधिष्ठान ही अध्यस्त रूप भासता है, द्रष्टा ही रूप है और साक्षी ही स्वप्न नगर रूप है । इस प्रकार यह विश्व परब्रह्म राम का ही विर्वत है । वेद उन निरवयव परमात्मा के संकल्प रूप अंगों से ही सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय बताता है । हे हनुमान ! उस अनादि राम को तूम अपना आत्मा जानो । जैसे-जल और तरगं में सत्ता से कोई भेद नहीं, इसी प्रकार परमात्मा एवं आत्मा में कोई भेद नहीं है और वही आत्मा तुम ही हो ।

सो तैं ताहि तोहि नहिं भेदा,
बारि बीच इव गावहि वेदा ।

हे हनुमान ! अज्ञानी लोग एक काल, एक देश, एक रूप में रहने वाले व्यक्ति को ही परमात्मा मान उनके सत्य स्वरूप से अपरिचित ही रहते हैं । सत्यराम तो व्यापक, अगोचर एवं अविनाशी है ।

देश काल दिशि विदेसहु माहि,
कहहुँ सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहिं ।

व्यापक ब्रह्म अलख अविनाशी,
सत चेतनघन आनन्द राशी ।

इसलिये हे हनुमान ! तुम यदि अपना कल्याण चाहते हो तो अपने हृदय स्थित जो साक्षी आत्मा हैं, उन्ही निर्गुण आत्माराम का सोऽहम् रूप में अभेद चिन्तन करो और इस सगुण दृश्य चराचर को मिथ्या रूप जानो ।

इस साकार माया के रहस्य को समझने में बड़े-बड़े पंडित, मुनि, देवादि भी भ्रमित हो जाते हैं ।

निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण न जाने कोई ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होई ।।

रामायण

अस्तुः हे हनुमान ! अब से दासोऽहम् भाव छोड़ तुम चिदानन्द, साक्षी, आत्मा में शिवोऽहम् भावना करके कल्याण को प्राप्त होओ ।

हे प्रिय हनुमान ! मैंनें तुम्हारे कल्यणार्थ यहाँ तक तत्त्व ज्ञान के लिये अनेकों आवश्यक परिभाषाओं का ज्ञान कराया । ताकि तुम राम तत्त्व को जन्म-मरण रूप षड़ विकारी देह से भिन्न आत्मा रूप सरलता से समझ सको । इसीलिये मैंनें तुम्हे अवतार वाद का भी रहस्यमय रहस्यमय उपदेश किया कि -

रामकृष्ण अवतार है, इनकी नाहि माड ।
जिन साहब सृष्टि करी, तिनहुं न जायो रांड ।।

समुद्र पाटि लंका गयो, सीता को भरतार ।
ते अगस्त अंचैल लियो, इनमें को करतार ।।

गिरवर धारयो कृष्णजी, द्रोणगिरि हनुमंत ।
शेष नाग सब सृष्टि धरी, इनमें को भगवत ।।

चार भुजा के भजन में, भूली परे सब संत ।
निरंजन उसे सुमिरिये, जाकी भुजा अनन्त ।।

रामा मरि गये कृष्णा मरिगये, मरिगये मीरा बाई ।
निरंजन उसे क्यों नही भजते, जिसे मौत कभी नहीं आई ।।

अतः हे हनुमान ! तुम अब अपने मूल विषय पर पुनः मन को स्थिर करो । क्या तुम्हें याद है कि श्रीराम से कथा प्रश्न किया था ?

हाँ माता ! मैंने पूछा था कि हे प्रभो ! आपका सेवक इस जन्म-मरण के सृष्टि चक्र से, शोक-मोह के सागर से पार होना चाहता है । अतः मेरे कल्याण केलिये मार्ग दर्शन कीजिये ।

हे वत्स हनुमान ! तुम बलवान ही नहीं बल्कि बुद्धिमान भी हो, तुमने ठीक स्मरण रखा । अब आओ अपने मूल विषय राम तत्त्व पर पुनः विचार प्रारंभ करें । जिसे तुम्हें समझाने हेतु मुझे आदेश किया है ।

अनादि राम सत्ता मात्र निराकार तत्त्व है । जैसे चुम्बक के सकाश से लोह चुर्ण या पेपर पिन्स में गति भासने लगती है, उसी प्रकार प्रारब्ध युक्त शरीर जड़ होने पर भी चेतन आत्मा के संसर्ग से जीवोंको जड़ योनि तक भोगने की भूमिका भी वही प्रदान करता है । जिसका आदि एवं अन्त आजतक किसी को नहीं मिला, उस परम ब्रह्म राम को अज्ञानीजन अपनी-अपनी कल्पना अनुसार ''अन्धो का हाथी'' होने की तरह धनुष, मुरली, त्रिशुल, चतुर्भुज, दिगम्बर, श्वताम्बर आदि अनेक रूपवाले बतलाते हैं । वेद भी जिसका वर्णन करते-करते नेति-नेति कहकर चुप हो जाते हैं । जो सभी जीवों को सुषुप्ति में आनन्द रूप अनुभव बें आता है । वही ब्रह्म राम सच्चिदानन्द स्वरूप हैं एवं वही समस्त जीवों में प्रत्येक क्रिया को साक्षी हैं । जिसके आनन्द की एक बुंद से समस्त जगत् आनन्द का अनुभव करता है । जब सद्‌गुरु द्वारा दिव्य ज्ञानचक्षु प्राप्त होता है, तभी उस ब्रह्म राम के परमार्थ; स्वरूप का अनुभव कोई साधन चतुष्टय सम्पन्न पुरुष आत्मा रूप में अनुभव कर पाता है ।

न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्व चक्षुषा ।
दिव्य ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ।। ११/८ : गीता

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढ़ोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ।। ७/२५ : गीता

अपनी योगमाया (मूल प्रकृति) से छिपा हुआ वह सबको प्रत्यक्ष भासित नहीं होता है । इसलिये यह अज्ञानी भक्त समाज उस जन्म रहित,

अविनाशी परमेश्वर को नहीं जानते, प्रत्युत जन्मने-मरने वाला मान, जन्मोत्सव मनाते हैं। हे वत्स ! ऐसे मुढ लोगों द्वारा नाना कष्टप्रद साधन करने पर भी उन्हें उस परमब्रह्म की अनुभूति नहीं होती है, जिसे आत्मज्ञ मुनि लोग सदैव भजते रहते हैं ।

'अनुभव गम्य भजहि जेहि सन्ता'

हे हनुमान ! मुझे ही संसार की उत्पत्ति, स्थिति और लय करने वाला मूल प्रकृती जानो । अर्थात मैंही इनकी सन्निधि मात्र से विश्व की रचना करती हूँ । जैसे बिजली की सन्निधि मात्र से समस्त विद्युत उपकरण, मशीने अपना-अपना कार्य करने लग जाते हैं, उसी प्रकार तुम यह दृश्यमान जगत् की रचना उसी परमात्मा की सन्निधिमात्र से मेरे द्वारा उत्पन्न होकर स्थित जानो । बुद्धिहीन लोग मेरी रचना को आत्मा में आरोपित कर अनादि काल से इस संसार चक्र में भ्रमित हो रहे हैं ।

हे वीर हनुमान ! मैं तुमसे सत्य कहती हूँ, क्योंकि तुम श्रीराम के निष्कामी भक्त, सनातन राम तत्त्व को जानने की अभिलाषा से उपस्थित हुए हो, इसलिये जानलो कि अयोध्यापुरी में दशरथ के पुत्र रूप में जिनका जन्म हुआ, वह राम मैं ही हूँ और फिर विश्वामित्रजी की सहायता करने के लिये मैं ही राम, लक्ष्मण का रूप धारण कर उनके साथ आश्रम जाकर यज्ञ रक्षार्थ राक्षसों को मारा था । मैंने अहिल्या को शाप से मुक्ति किया था, एवं महादेवजी के धनुष को जनकजी की सभा में जाकर तोड़ा था ।।३६ ।। तत् पश्चात् मैरा पाणिग्रहण मैंने ही राम रूप से किया था ।

हे हनुमान ! बारह वर्ष मेरे साथ अयोध्यापुरी में रहना फिर दण्डकारण्य में जाना, निराध-का वध करना माया मृग मारीच का रूप धारण करना एवं मारा जाना, माया मयी सीता हरण होना ।।३८।। तदन्तर जटायु और कबन्ध का मुक्त होना, शबरी द्वारा भगवान का पूजित होना और सुग्रीव से मित्रता होना, फिर बालि का वध करना, सीताजी की खोज करना, समुद्र पर पुल बांधना और लंका पुरी को घेर लेना ।।४० ।।पुत्रों के

सहित दुरात्मा रावण को युद्ध में मारना एवं विभीषण को लंका का राज्य देकर पुष्पक विमान द्वारा मेरे साथ अयोध्या लौट आना, फिर श्रीरामजी का राज्य पद पर अभिषिक्त होना इत्यादि समस्त कर्म यद्यपि भिन्न–भिन्न रूपों को धारण करके, मेरे ही किये हुए हैं, तो भी अज्ञानी लोग इन सब कर्मों का दोषारोपण निष्क्रिय, निर्विकार, सर्वात्मा, अचल परब्रह्म राम में स्वरूपाध्यास के कारण देखते हैं ।

एवमादीनि कर्माणि मयैवाचरितान्यपि ।
आरोपयन्ति रामेऽस्मिन्निर्विकारेऽखिलात्मनि ।। ४२

किन्तु हे हनुमान !

रामो न गच्छति न तिष्ठति नानु शोच –
त्याकांक्षते त्यजति नो न करोति किञ्चित् ।

आनन्द मूर्तिरचलः परिणाम हीनो,
माया गुणाननुगतो हि तथा विभाति ।। ४३ ।।

परब्रह्म राम तो इन देहधारी सीता पति राम से भिन्न हैं । वे राम तो वास्तव में निरवयव हैं । उनके मनुष्य की तरह आकार अंग नहीं है । इसलिये वे न चलतेहैं, न ठहरते हैं, न शोक करते हैं, न इच्छा करते हैं, न त्यागते हैं, और न कोई अन्य क्रिया ही करते हैं । वे राम तो आनन्द स्वरूप, अविचल और परिणाम हीन हैं । केवल माया के गुण से व्याप्त होने के कारण ही ये साधारण मनुष्य की तरह लोक व्यवहार करते हुए से प्रतीत हैं । मूल प्रकृति के कार्य देखकर ही अज्ञानी व्यक्ति ब्रह्म राम में हुआ मानते हैं । यह भ्रम उसी प्रकार हो रहा है, जैसे–बादल के दौड़ने को चन्द्रमा का दौड़ना, नौका के चलने पर नदी तट के वृक्ष, मकान, पर्वतो आदि का चलना, पृथ्वी के घूमने को सूर्य का उदय–अस्त होना, घूमते हुए पुरुष को आस–पास के दृश्य घूमते हुए मासमान होना; की तरह माया के साकार नाम–रूप श्रीराम की क्रिया का सच्चिदानन्द ब्रह्म राम में अध्यारोप किया जाता है ।

हे हनुमान ! यह मेरे दाँये ओर जो धनुषधारी कमल-नयन श्रीराम बैठे हुए देख रहे हो, यह मेरा ही मायावी रूप है । इनका जन्म, विकास-हास, नराकार में होता भास रहा है । इनमें शोक-मोह, हर्ष-दुःख, काम-क्रोध, संयोग-वियोग, ग्रहण-त्याग, चलना-बैठना, सोना-जागना, खाना-पीना यह जो कुछ भी दिखाई पड़ता है, वह सब मेरा ही कार्य है, किन्तु जैसे अज्ञानी व्यक्ति घटके धर्मों को घटावच्छिन्न आकाश में आरोपित करता है । अर्थात् घटके जन्म, आकार, गमनागमन एवं नाश रूप घट की क्रिया को घटाकाश में मानता है; जबकि आकाश, घट धर्मों से सर्वथा पृथक् है । इसी प्रकार माया के समस्त विकारों से पृथक् मायाधीश ज्ञान स्वरूप राम हैं, किन्तु अज्ञानी जन उन्हें विकारी जानते हैं ।

अथवा मणि के पास लाल,पीले, नीले, गुलाबी बैंगनी हरे आदि प्रकाश को मणि में अध्यारोपित करते हैं । जबकि मणि समस्त रंगों से पृथक् शुद्ध निर्मल । इसी प्रकार निरूपाधिक आत्म राम सभी अनात्म देह, इन्द्रिय, प्राण तथा अन्तःकरण के धर्मों से पृथक् एवं उनके प्रकाशक द्रष्टा, साक्षी, स्वयंप्रकाश स्वरूप हैं; किन्तु अज्ञानीजन माया उपाधि के कार्यों को निजात्म स्वरूप राम पर आरोपित करते हैं ।

हनुमान के प्रति श्रीराम तत्त्व उपदेश करने के पश्चात सीताजी ने अपनी वाणी को विश्राम दिया । तब हनुमान उठ खड़े हुए एवं श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम हेतु दण्डवत गिर पड़े । सीताजी ने उनके मस्तक पर अपना अमृतमय अमय कर-कमल रख 'तत्त्वमसि' महावाक्य रूप आशिर्वाद दिया और कहा-हे वत्स हनुमान ! उठो एवं अपने वास्तविक स्वरूप में संशय रहित दृढ़ बुद्धि करो मनुष्य जीवन की महिमा किसी सांसारिक पद, प्रतिष्ठा, धन, सम्पत्ति, त्रौलोक्य का राज्य पाने हेतु नहीं है । यह देव दुर्लभ योनि अपने अनादि आत्म स्वरूप का अनुभव करलेने हेतु ही है ।

उेत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरानिबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्या,
दुर्गं पथस्तत् कवयोवदन्ति ।। कठोप. १/३/१४

यमराज भी नचिकेता को यही उपदेश करते हैं कि 'तुम कसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में अति शीघ्र जाकर अपने भूले स्वरूप को जान लो । हे हनुमान ! मैं भी तुम से यही कहती हूँ ि तुम उसके लिय श्रेष्ठ पुरुषों के पास जाककर, इस दासभाव का परित्याग कर, सोऽहम् भाव में दृढता से टिक जाओ । क्योंकि यह द्वैतभाव वाली माया की गति तीक्ष्ण तलवारवत् बड़ी सूक्ष्म है । इसके जाल से कोई श्रीराम कृपा पात्र तुम जैसा शूरवीर ही बच पाता है, अन्यथा इस माया ने बड़े-बड़े अहंकारियों के गर्व को मिट्टी में मिलाकर रख दिया है । अतः तुम अति शीघ्र मेरे स्वामी श्रीराम के सम्मुख अपने कल्याणार्थ ब्रह्मा तत्त्व जिज्ञासा लेकर पहुँच जाओ, वे अपने राज्य कार्य से अवकाश प्राप्त कर, तुम्हारी ही प्रतिक्षा में होंगे । इतना कहकर सीताजी अपने शान्त स्वरूप में स्थित हो, मौन हो गई ।

श्रीराम उपदेश

महादेवजी ने पार्वतीजी से कहा–सीताजी के उपदेश के पश्चात हनुमान उनसेै आशिर्वाद प्राप्त कर श्रीरामजी के समीप आकर, भली प्रकार दण्डवत् साष्टांग प्रणाम कर, हाथ जोड़ उनसे उपदेश श्रवण की आशा रख बैठ गये । राज्य कार्य से निवृत होकर बैठे ही थे कि उसी समय अपने सेवक हनुमान से पूछा कि – हे हनुमान ! अभी तक तुम्हें सीताजी ने जो उपदेश किया है, वह मुझे सारांश में कह सुनाओ, फिर मैं उसके बाद के विषय पर तुम्हे समझाने का प्रयास करूँगा ।

श्रीरामजी की आज्ञा पाकर हनुमान ने सीताजी द्वारा श्रवण किये आत्म–अनात्म, जड़–चेतन, द्रष्टा–दृश्य, सत–असत्, मिथ्या, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, परिणाम, विवर्त, विवेक,वैराग्य, षट सम्पति, मुमुक्षुता, ज्ञान, भक्ति, योग, अखंड, असंग, त्रिपुटी, संशय, श्रवण, मनन निदिध्यासनादि विषयों को कै सुनाया ।

यह सुनकर श्रीरामजी ने कहा–हे हनुमान ! अब मैं तुम्हें त्रिदोष, चिदाभास, पंचभ्रान्ति, ज्ञान की सप्त भूमिका एवं परमात्मा आदि महत्व पूर्ण गूढ विषयों को अच्छी प्रकार से कहता हूँ, क्योंकि तुम मेरे एवं सीता दोनों के प्रति अत्यन्त अनन्य भक्ति रखते हो । तुम्हारे द्वारा हमारे प्रति की गई निष्काम सेवा भक्ति से हम दोनों तुम पर बहुत प्रसन्न हैं । अस्तुः अब तुम एकाग्रता पूर्वक सुनो । ।। ४४ ।।

हे हनुमान ! जीव के अन्तःकरण में मल, विक्षेप तथा आवरण यह त्रिदोष हुआ करते हैं । इन दोषों की निवृत्ति हेतु बेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान तीन साधन बताये हैं ।

किसी भी प्राणी को मन, वचन तथा कर्म द्वारा सताना, हत्या करना यह जीव के मन का मल दोष कहलाता हैं – जिसके निवृत्ति के लिये वेद में ८०,००० मंत्र कर्म कांड का प्रतिपादन करते हैं । निष्काम कर्म के द्वारा जब जीव के मन में समता, प्रेम, दया, क्षमा, अहिंसा, त्याग, परोपकार, निष्कामता जाग्रत हो जाती है, तब उसे अपने मन को निष्पाप जान लेना चाहिये एवं मल दोष की निवृत्ति का उपचार साधन कर्म काण्ड का परित्याग कर, मन के दूसरे दोष विक्षेप की निवृत्ति हेतु उपासना का सेवन करना चाहिये ।

चित्त का एक निर्णय नहीं होना, एक लक्ष्य पर निष्ठा न होना, चित्त की चंचलता ही विक्षेप दोष है । इसकी निवृत्ति हेतु वेद में १६, ००० मन्त्र हैं। जब उपासना करते-करते चित्त प्रसन्न, एकाग्र तथा मन सें आत्मा जिज्ञासा जाग्रत हो जावे, मुक्ति अभिलाषा जाग उठे, परमात्म साक्षात्क्ार के लिये मन बेचेन हो जावे, तब उपासना का परित्याग कर मन के तीसरे आवरण दोष की निवृत्ति हेतु,आत्म साक्षात्कार के लिये किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु की तलाश में तत्काल चल देना चाहिये ।

अपने आपको आत्मा रूप न जान देह रूप जानना एवं परमात्मा को अपने से भिन्न मानना ही आवरण दोष कहलाता है । अपने को देह मानने वाला स्त्री-पुरुष, बाल, किशोर,यूवा, प्रोढ, तथा वृद्ध, सुन्दर-असुन्दर, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र, उड़िया, बंगाली, बिहारी, तेलगु, मरवाड़ी, सिन्धी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, मद्रासी, रोगी-निरोगी, दुबला-मोटा, लम्बा-नाटा, ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी आाााादी नाम, रूप, जाति , आश्रम, सम्बन्ध, परिणाम एवं जन्म-मृत्यु रूप मानता है । इसके अलावा मैं एक दिन कर्म, भक्ति, योग या ज्ञानादि द्वारा परमात्मा को

प्राप्त कर लूँगा, इस प्रकार की धारणा को आवरण दोष कहते हैं । हे हनुमान ! सद्गुरु द्वारा वेदों के 'तत्त्वमसि' (वह तू है) महावाक्य का श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर यह जीव अपने देह के साथ मिथ्या अध्यास तोड़ अपने असली स्वरूप-ब्रह्म में ही निश्चयकर मुक्ति का अनुभव करता है । इस अभेद चिन्तन के अलावा मुक्ति का अन्य कोई भी मार्ग नहीं है । इस दोष की निवृत्ति हेतु ४,००० मंत्र माने जाते हैं ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यातेऽयनाय

३/८ श्वेता. उप.

हे वत्स ! जीव को संसार चक्र में अनादि से भटकाने वाले उसके कर्म ही एकमात्र कारण है । वर्तमान में फल पाने की आशा से जो कर्म किसे जाते है, वह क्रियमाण कर्म कहलाते हैं । जिनमें से कुछ कर्मों को संचित् कर्म कहते हैं । तथा संचित् कर्मों से फलित भोग को प्रारब्ध कर्म भोग कहते हैं ।

जीव द्वारा अनादि से संचित् अनन्त कर्मों को भोग कर समाप्त नहीं किया जा सकता है, क्योंकि एक जन्म के भोगने के लिये प्रारब्ध से मिला शरीर से पुनः १,००० आगामी जन्मों का शुभाशुभ कर्म जीव संचय कर लेता है । इस कारण इन्हें भोग कर कभी समाप्त नहीं किया जा सकते । क्योंकि कोई भी शुभाशुभ कर्म बिना फल दिये (निष्फल) नहीं रह सकता है । शुभ कर्म फल भोग में भी मरना-जन्मना तो लगा ही रहता है । इसका नाश तो केवल आत्म ज्ञान द्वारा ही होता है । प्रारब्ध तो भोग कर ही समाप्त होता है । उसे कोई, मंत्र, ताविज, जप, पूजा, पाठ, दान, तीर्थ, मन्दिर, ध्यान आदि साधन द्वारा बिना भोगे छूट नहीं सकता । यदि प्रारब्ध ज्ञान द्वारा नष्ट हो जावे तो ज्ञानी के शरीर की मृत्यु तत्काल हो जाने से ज्ञान परम्परा ही नष्ट हो जावेगी ।

ज्ञान द्वारा समस्त कर्मों का नाश किस प्रकार होता है ? यदि तुमको इस प्रकार संशय है, तो तुम ऐसा जानो कि इँधन के ढेर को अग्नि की चिनगारी जिस तरह भस्म कर देती है । उसी प्रकार जिस साधन चतुष्टय

अधिकारी साधक के अन्तःकरण में ''मैं ब्रह्म हूँ, अहं ब्रह्मास्मि' ऐसा दृढ़ बोध सदगुरु कृपा से हो जाता है । तब मैं कर्ता-भोक्ता, जन्म-मृत्यु वाला हूँ ऐसा भ्रम ''मैं साक्षी आत्मा हूँ'' इस ज्ञानाग्नि में नष्ट हो जाता है ।

हे हनुमान ! मैं ब्रह्म हूँ, यह अपरोक्ष ज्ञान सदगुरु द्वारा जीव को ही दिया जाता है, न आत्मा को और न शरीर को ।

जीव अपने वास्वविक स्वरूप-ब्रह्म का अहंकार छोड़ देह, इन्द्रिय, प्राण एवं मन, बुद्धि, चित्तादि के गुण धर्मों में अहंकार कर, जन्म-मरण को प्राप्त होता रहता है एवं सदगुरु के आत्मेपदेश द्वारा ही जीव का देहाध्यास छूट वह ब्रहाात्मैक्यता को प्राप्त हो जाता है ।

हे हनुमान ! मैं तुम्हें चिदाभास की सात अवस्थाओं को समझाने के लिये प्रथम एक दृष्टांत कहता हूँ, उसे तुम ध्यान पूर्वक सुनो जिससे तुम्हारा आत्मा के प्रति संशय भ्रम तत्काल निवृत्त हो सकेगा ।

एक समय १० व्यक्ति गाँव से नशा कर दूसरे गांव नाटक देखने हेतु दोपहर से चल दिये, रास्ते में उन्हें एक वहुत बड़ी मृग मरीचिका वाली नदी दिखाई पड़ी तो सबने कहा एक दूसरे का हाथ पकड़ लें, ताकि कोई हममें सह डूबने लगे तो पता लग जावेगा । सभी ने कपड़ों को ऊपर कर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर नदी में चलना शुरु किया । चलते-चलते जब बहुत समय बाद नदी पार करचुके तब सोचा एकवार गिनकर देखलें हममें से कोई डूबा तो नहीं यदि कोई डूबा होगा तो पता लग जावेगा ।

जब उनके मुखिया ने गिना तो उसे नौ पुरुषों का प्रत्यक्ष हुआ और अपने को न गिनकर चिल्ला उठा । अरे ! हममें से एक डूब गया है । फिर दूसरे स पूछा कि वह दसवाँ पुरुष तुम्हें मालुम है । एक एक करके सभी ने कहा अच्छा मैं गिनती करता हूँ तुम सब एक पंक्ति में खड़े हो जाओ । गिननेवाला दसंवा पुरुष स्वयं था किन्तु वह अपने को गिनना भूल जाता था । उनके इस व्यवहार का कारण अज्ञान का कार्य आवरण है । फिर तो उस दसवॉ के नदी में डूबकर मर जाने के दुःख में सभी रोने लगे और काफी विक्षेप को प्राप्त हुए ।

उस समय उस नदी की ओर से किसी व्यक्ति को आता देख उन्होंने उससे पूछा कि – अरे भैया ! क्या आपको हमारा एक साथी–दसवाँ पुरुष पीछे नदी में डुबता, तैरता, मरा या जिन्दा दीखा ? उसने कहा नहीं तो ! तब वे और जोरों से रोने लगे तो उस नूतन व्यक्ति ने सोचा कि यहां तो कोई नदी भी नहीं है औार ये पूरे दस ही है ! तब उससे कहा कि दसवाँ है, मरा नहीं है । यह सुनकर उनका रोना बंद तो हो गया इस प्रकार दसवें का परोक्ष ज्ञान होने पर भी उन्हेह यह अपरोक्ष ज्ञान न हो सका कि वह कहाँ है और कौन है ? तब उस यथार्थवादी से फिर पूछा कि भाई ! जलदसीसे बतलाइये कि वह कौन है ? उसके बिना हमारे प्राण निकल जा रहे हैं, उनके पिता हमें मारेंगे, जेल में बन्द करवा देंगे । तब उस व्यक्ति ने नौ को उन्हीकी तरह गिनकर बता दिया और वह 'दसवाँ तू है' इस प्रकार अपरोक्ष बोध करा दिया । तब ''मैं दसवाँ हूँ'' ऐसा जानकर वह हर्षित हो उठा । उन सभी को शान्ति मिल गयी तथा सब चिन्ता दूर हो गयी ।

हे हनुमान ! इसी प्रकार शुद्ध ब्रह्म का अविद्या उपाधि में पड़े प्रतिविम्ब जिसे चिदाभास कहते हैं उस की सात अवस्थाएँ हैं । यथा : (१) अज्ञान (२) आवरण (३) शोक (४) आवन्तरवाक्य एवं परोक्ष ज्ञान (५) शोक नाश (६) महावाक्य और अपरोक्ष दृढ ज्ञान तथा (७) अति हर्ष ।

१) अज्ञान : अपने आपको न जानना ही अज्ञान है ।

२) आवरण : इसके २ भेद हैं – मैं आत्मा को नहीं जानता, मैं अपने को नहीं जानता, मेरी मुझको खबर नहीं, यह अभानापादक आवरण है, एवं परमात्मा, आत्मा है ही नहीं यह असत्वापादक आवरण कहलाता है ।

३) शोक: अपने आपके न जानने एवं देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि करा मैं मानने से जन्म–मरण का दुःख होना यह तीसरा दोष है ।

४) परोक्षज्ञान : परमात्मा, आत्मा की खोज करता हुआ दुःखी जीव जब सद्गुरु द्वारा यह जान लेता है कि आत्मा है, परमात्मा है यह आवान्तर वाक्य सुनने से उसे परमात्मा का परक्षोज्ञानता हो जाता है किन्तु वह कौन है यह अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता है।

५) शोकनाश: इस प्रकार का आवन्तर वाक्य द्वारा ब्रहात्मा के सम्बन्ध में परोक्ष ज्ञान होने से उस जीव के मन से आत्मा को असत्वापादक आवरण दोष दूर होकर शोक, चिंता नष्ट हुई किन्तु आत्म साक्षतकार नहीं हुआ । तब सद्गुरु से जीव पूछता है कि हे गुरुदेव ! जिस आत्मा को न जानने से मैं दुःखी था एवं जन्म-मरण में भटक रहा था । उस आत्मा के सम्बन्ध में आपने बतलाया कि 'सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म' वह आत्मा सच्चिदानन्द अनन्त ब्रह्म है । अब आप कृपया मुझे यह भी बतलावें कि वह कौन एवं कहाँ है ताकि मैं उसे जानकर दुःख-शोक से सदा के लिये मुक्त हो जाऊं ।

६) अपरोक्ष ज्ञान: तब सद्गुरु 'तत्त्वमसि' वह तू ही सबका साक्षी ब्रह्म है, ऐसा महावाक्य का उपदेश किया,जिसे श्रद्धा पूर्वक श्रवण, मनन कर 'अहं ब्रह्मास्मि' अर्थात मेरा ही यह सत्य स्वरूप है ऐसा तत्काल बोध हो गया कि जिस मैं पाना, चाहना या वह मैं स्वयं ही हूँ ।

७) अतिहर्ष:- मैं ही वह ब्रह्म हूँ जब ऐसा अपरोक्ष दृढ ज्ञान होता है तब ब्रह्मात्मा के सम्बन्ध में अभानापादक आवरण नष्ट हो जाता है, एवं जीव ब्रह्म-एकत्व बोध होने से अखंडानन्द को प्राप्त हो जाता है ।

हे हनुमान ! वास्तव में तो यह चिदाभास सुख-दुःख विकारों से रहित ही है किन्तु अनादि काल से यह अपने असली चैतन्य ब्रह्म स्वरूप को न पहचान कर जड़ देह संघात् में ही अहं-मम बुद्धिकर-मैं मनुष्य हूँ, कर्ता-भोक्ता, दुःखी-सुखी, पापी-पुण्यात्मा, बन्धन में हूँ । इस प्रकार यह

अन्य के धर्मों में एकता कर बैठा है; यही अनात्मा से अपने चेतना आत्मा की एकता का भ्रम ही जड़-चेतन की ग्रन्थि कहलाती है और बिना ग्रन्थि नाश के यह जीव कभी सुखी नहीं हो पाता है ।

जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई ।
जद्यापि मृषा छूटत कठिनाई ।।

तबते जीव भयउ संसारी ।
छूट न ग्रन्थि न होई सुखारी ।।

रामायण

भिद्याते हृतयग्रन्थिः छिद्यान्ते सर्व संशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तत्मिन्दृिष्टे परावरे ।।

– मुण्ड, उप. २/२/८

हे हनुमान ! जब किसी सदगुरु की कृपा से यह देह, प्राण, इन्द्रिय तथा मन, बुद्धि के धर्मों में से जीव का मैं पते का आध्यास छूट जाता है, और जब साक्षी आत्मा में ही चिदाभास जीव 'सोऽहम्' रूप अभेद धारणा कर लेता है, तभी जाकर इस जीव के समस्त संचित् एवं क्रियमाण कर्मों का नाश हो जाता है । सोऽहम् ज्ञान होने के क्षण से यह जीवन्मुक्त एवं शरीर छूट जाने के बाद विदेह मुक्ति को प्राप्त करता है ।

हे हनुमान ! वास्तव में जब चिदाभास में भी विकार नहीं है, तब साक्षी आत्मा में तो विकार की कल्पना ही हो नहीं सकती है । अब तुम्हारे मन में यह प्रश्न स्वाभाविक हो सकता है कि जब साक्षी को जन्म-मृत्यु, कर्ता-भोक्ता,सुख-दुःख का भ्रम नहीं तब यह भ्रम मिथ्या चिदाभास ही होना चाहिये जो को देह, प्राण, इन्द्रिय मनादि के धर्मों में ही एकत्व करने से हो रहा है । फिर उस मिथ्या चिदाभास को ही सदगुरु द्वारा ''तू ब्रह्म है'' तत्त्वमसि यह महावाक्य उपदेश करना तो उचित प्रतीत नहीं होता है ।

हे प्रिय वत्स ! चिदाभास जब ''मैं ब्रह्म हूँ'' ऐसा निश्चय करता है, तब वह देह, प्राण, इन्द्रिय तथा अन्तःकरण की ओर से अपना तादात्म्यता

छोड़, अपने असली प्रकाशक बिम्ब ब्रह्मात्मा में ही ''मैं ब्रह्म हूँ'' मेरा असली स्वरूप 'ब्रह्म' है, ऐसा निश्चय करता है । मैं चिदाभास जीव भी हूँ, एवं चिदात्मा ब्रह्म भी हूँ, इस प्रकार का दोनों अहंकार नहीं करता है । बल्कि मिथ्या प्रतिबिम्ब रूप चिदाभास चिदाभास से अहंकार छोड़ के असली बिम्ब स्वरूप चिदात्मा को ही अपना स्वरूप समझता है ।

यदि कहो कि तब तो जीव का नाश ही हो जायगा, फिर उसे ब्रह्म होने का क्या लाभ ? भला कोई राजा बनने के प्रलोभन में फांसी प्रथम स्वीकार क्यों करेगा ?

हे हनुमान ! मनुष्यों को बड़े लाभ, सुख के लिये जगत् में भी छोटे लाभ, सुख का त्याग करते देखा जाता है । जैसे-देश की स्वतन्त्रता की रक्षा हेतु वीर सेनानी युद्ध क्षेत्र में अपने देहका त्याग कर वीर गति प्राप्त करदे हैं अथवा देवत्व प्राप्त करने के लोभ में, अंग काटकर चढ़ादेते हैं या अग्नि में लोग जल जाते हैं । अथवा गंगादि नदियों में डुबकर जल समाधि ले सहर्ष देह त्याग कर देते हैं । इसी प्रकार अखण्ड, सत, चित व आनन्द, ब्रह्म स्वरूप, साक्षी आत्मदेव मोक्ष पद प्राप्त कर लेने की आशा में, वह अपने मिथ्या विकारी, जड़, दुःख रूप चिदाभास का नाश भी स्वीकार कर लेता है ।

हे हनुमान ! विचार करके देखा जाय तो यह सामान्य मृत्यु इस चिदाभास रूप जीव को मारती ही नहीं है । कोई लोक, कोई देवता, कोई शक्ति, कोई साधन, इस जीव की मृत्यु करने में समर्थ नहीं है । जिसे लोक साधारण तय मृत्यु कहते हैं, उससे तो जीव को एक शक्ति व भोग सम्पन्न नया शरीर ही मिलता है । चिदाभास रूप जीव की असली मृत्यु तो किसी सद्गुरु की कृपा से जीव के अन्तःकरण में ज्ञानाग्नि उत्पन्न करने से ही हिोती है । विदेह मोक्ष में सूक्ष्म शरीर रूपी दर्पण ही नष्ट हो जाता है, तब फिर उसके अभाव में चिदाभास रूपी प्रतिबिम्ब किसमें रहेगा ? यही जीव की सच्ची मृत्यु एवं मुक्ति है । इस ब्रह्मात्म ऐक्य ज्ञान के पूर्व तो मृत्यु के नाम पर, मात्र देहरूप कपड़े ही बदले जाते हैं ।

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमासद्थतः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ।।

गीता–६–३१

अर्थात् जो ब्रह्मज्ञानी महापुरुष ''मुझ सहित यह सब ब्रह्म है'' इस प्रकार एकत्व आश्रय करके सम्पूर्ण भूतों में अधिष्ठान रूप से सहने वाले मुझको सोऽहम् अर्थात् अभेद भाव से भजता है । वह ज्ञानी अपने प्रारब्ध के अनुसार सब प्रकार का व्यवहार करता हुआ भी, अर्थात् शरीर की चेष्टाओं से, सामान्य लोगों की दृष्टि में बालक, मुर्ख, पागल आदि के समान प्रतीत होता हुआ भी अपनी (आत्मा की) दृष्टि से निर्विकार ब्रह्म स्वरूप में ही स्थित रहता है । उस ज्ञानी के देह छूटने पर वह मुझ आनन्द स्वरूप व्यापक ब्रह्म में ही स्थित हो जाता है ।

'सर्व भूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते'

गीता ५–७

अर्थात् जिस ज्ञानी का आत्मा सम्पूर्ण प्राणियों का स्वरूप भूत आत्मा है, जो ब्रह्मवित् सर्वात्मिता को प्राप्त हो गया है, अपनी आत्मा को सर्व प्राणियों की आत्मा में पुष्पमाला में सुत्रवत अनुभव किया है, ऐसा ज्ञानी प्रारब्धानुसार सभी प्रकार के कर्म करता हुआ भी बन्धन को प्राप्त नहीं होता है ।

हे हनुमान ! उसे ऐसा दृढबोध होता है कि इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि ये सब संस्कारों के अनुसार अपने–अपने विषयों में क्रियाएँ करते हैं, परन्तु मेरा असली स्वरूप कूटस्थ साक्षी तो ज्यों का त्यों हर अवस्था, भाव–अभाव, विक्षेप–समाधि, सुख–दुःखादि समस्त द्वन्द्वों में समान, एकरस ही रहता है ।

'लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा' – गीता: ५–१०

अर्थात् सभी प्रकार के वन्दनीय एवं निंदनीय कर्म होने से वह पाप–पुण्य को प्राप्त नहीं होता है । जैसे कमल पत्र को जल स्पर्श नहीं करता । यहाँ पाप शब्द से अधिक पुण्य भी अवश्य समझ लेना होगा अन्यथा पुण्य

को ग्रहण करलिया जाय तो फिर उसे भोगने स्वर्गादि लोक जाना होगा किन्तु कैवल्य मोक्ष नहीं हो सकेगा । अतः वह पुण्य-पाप से असंग ही रहता है ।

हे हनुमान ! दृढ़ ब्रह्मज्ञानी को भी प्रारब्ध शेष होने पर्यन्त देहादि व्यवहार में यहि में मनुष्य हुॅ, मैं कर्ता हुॅ, मैं यह नाम, जातिवाला गृहस्थ हूँ, मैं मरजाऊँगा, मैं पुण्य या पाप कर चुका हूँ इत्यादी अहंकार हो जावे तो भी वह इस प्रकार सामाजिक प्रतीतिरूप छोटे अपराध से प्रबल वेद प्रमाण, युक्ति एवं अनुभूति के आधार पर जानलिया कि मैं अकर्ता-अभोक्ता, असंग, निर्विकार ब्रह्म हूँ, ऐसी दृढता को प्राप्त हुआ ब्रह्मज्ञान फिर उसका नष्ट नहीं होता है ।

हे हनुमान ! मैं कर्ता-भोक्ता, जन्म-मृत्यु, सुखी-दुःखी, पापी-पुण्यात्मा, नाम, रूपधारी जीव नहीं हूँ । इस प्रकार जीव भाव, देह भाव की निवृत्ति एवं ब्रह्मरूप से स्थिति एकादशीव्रत की तरह नियम से अनुष्ठान करने जैसा व्रत नहीं है । क्योंकि एकादशी आदि व्रतों में तो सावधानी पूर्वक अन्न न खाना ही उपवास व्रत है । यदि भूल से अन्न का एक दान भी ग्रहण हो जावे तो वह उपवास टूट गया माना जाता है । अथवा किसी अनुष्ठान में कोई विघ्न हो जाने से वह भंग माना जाता है । जैसे राजा दक्ष के यहाँ सती पार्वती के क्रोधावेश के कारण यज्ञ ध्वंस हो गया था; उसी प्रकार यहाँ ऐसा भय भ्रम नहीं करना चाहिये । यदि थोड़ी देर के लिये जीवभाव आगया तो, उससे महान जीवन्मुक्ति समाप्त नहीं हो जाती है, ब्रह्म ज्ञान नष्ट नहीं हो पाता है । जैसे-रात्रि में सो जाने पर भी दिन का पाठ एवं परिवार, लेन-देन सम्बन्ध नहीं भूला जाता है । कल निद्रा केपूर्व जो विषय स्मरण था वही, जाग्रत होते ही पुनः स्मरण में आता है एवं रात्रि भर नीन्द में रहने से भी स्मृति में भूल नहीं होती है ।

अतः हे प्रिय वत्स हनुमान ! भ्रान्ति ज्ञान की निवृत्ति रूप जीवन्मुक्ति को जीव के सहज नित्यस्वरूप को बनाये रखने के लिये कोई व्रतादि की तरह नियम पूर्वक कुछ साधन अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं है ।

अपितु वह तो जीव की सहज स्थिति है । नित्य, स्वयंसिद्ध स्थिति को बनाये रखने के लिये दृढ निष्ठा से भिन्न कुछ साधन करनी की आवश्यकता नहीं है । क्या सूर्य के तेजस्वी रूप के सम्मुख वर्षा मास में कुछ काल बादल आजाने से सूर्य को अपने उष्ण, तेजस्वी, प्रकाश स्वभाव से कभी भ्रष्ट होते देखा है ? कभी नहीं । हे हनुमान ! तुम सनातन ब्रह्म ही हो ।

हे हनुमान ! तत्त्वज्ञान का अभ्यास करते–करते साधक ने जिस अनादि विपरीत देहाध्यास को मार भगाया है, यदि वह कभी–कभी पुराने संस्कार के कारण पुनः इस देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि संघात् पर अपना अधिकार दिखाने की चेष्टा करे तो, फिर उनको प्रबल वेद के प्रमाण 'अहं ब्रह्मास्मि', 'शिवोऽहम्' रूप डन्डे द्वारा मार भगाना चाहिये ।

हे वीर हनुमान ! आकाश में आंधी तूफान आया करे या बिजली, वर्षा हो किन्तु वे आकाश को न तो धूमिल कर गन्दा बना सकते हैं न वे आकाश को जला, सुखा, भिगा सकते हैं ! इसी प्रकार तुम निश्चय करो कि वही अचल, व्यापक, निर्विकार, अखण्ड और निष्क्रिय आत्मा मैं हूँ । मुझ आत्म समुद्र की लहर रूप यह चिदामास अपने जल अधिष्टान ब्रह्म के स्वरूप में किंचित भी विकार या हानि नहीं कर सकता है । ऐसी दृढ निष्ठा का नाम ही 'ज्ञान' या ''ब्रह्म साक्षात्कार'' है ।

जाग्रत्स्वप्न सुपुप्तयादि प्रपंचं यत्प्रकाशते ।
तत्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्व बन्धैः प्रमुच्यते ।।

कैवल्यापनिषद १९

अर्थात्–बुद्धि की जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्च्छा, ध्यान समाधि आदि समस्त अवस्थाओं को जो एक अखंड सच्चिदानन्द परमात्मा साक्षी रूप से प्रकाशित करता रहता है, वही ब्रह्म वस्तु मैं (जीव साक्षी) हूँ । यह जन्म–मरण, जरा, व्याधी धर्मों शरीर के हैं । इस प्रकार का शुद्ध ब्रह्म निश्चय करने वाला भाग्यशाली सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

एक एवात्मा मन्तव्यो, जाग्रत्स्वप्न सुषुप्तिषु ।
स्थान त्रयव्यतीतस्य, पुनर्जन्म न विद्याते ।।

हे हनुमान ! जो चिदाभास जीव इन समस्त अवस्थाओं का प्रकाशक नित्य, शुद्ध, बृद्ध, मुक्त, द्रष्टा, साक्षी, सच्चिदानन्द आत्मा को, व्यापक ब्रह्म रूप से अनुभव कर लेता है, उस ब्रह्मज्ञानी-महापुरुष का प्रारब्ध समाप्त होने पर इस वर्तमान देह के छूटने के बाद दूसरा जन्म नहीं होता है । हे हनुमान ! इस श्रुति वचन का तात्पर्य यह है कि ज्ञानी को शरीरान्तर की प्राप्ति कराने वाला चिदाभास सहित सूक्ष्म शरीर ही जब यहीं लीन हो गया तब, जन्म-मरण के चक्र में कौन जावेगा ? जैसे हवा निकलते ही बुदबुदापन समाप्त होकर जल सागर रूप में स्थित हो जाता है, वैसे ही ज्ञानी का प्रारब्ध पूर्ण होते ही सूक्ष्म शरीर विशिष्ट चिदाभास समाप्त होकर ब्रह्मरूप से स्थित हो जाता है । पुर्नजन्म के अभाव से उसका यह मोक्ष पद नित्य है ।

भ्रान्ति रूप संसार

हे हनुमान ! एक अद्वितीय ब्रह्मज्ञान होने के पूर्व सभी जीवों के मन में (१) भेदभ्रान्ति (२) कर्ता भोक्ता भ्रान्ति (३) संग भ्रान्ति (४) विकार भ्रन्ति तथा ब्रह्म से भिन्न जगत् एवं देह की सत्यता की भ्रान्ति रहती है । जब सद्गुरु द्वारा यह पांचों भ्रान्ति दूर होकर एक अद्वितीय ब्रह्म का मैं रूप में बोध होता है, तभी यह जीव ब्रह्मरूपता को प्राप्त होता है ।

'ब्रह्म वित ब्रह्मैव भवति' (वेद)

(१) भेद भ्रान्तिः– ब्रह्म से मैं पृथक् हूँ । इस भेद भ्रान्ति को दूर करने के लिये बिम्ब प्रतिबिम्ब युक्ति का सहारा लेना पड़ता है । जैसे–बिम्ब स्वरूप मनुष्य एक होने पर भी दर्पण उपाधि से नाना आकार वाला भासता है । तैसे अविद्या उपाधि के कारण एक ब्रह्म ही नाना रूप में भासता है । जैसे–दर्पण स्थित प्रतिबिम्ब बिम्ब से भिन्न नहीं तैसे अविद्या से प्रतीत जीव भी ब्रह्म से भिन्न नहीं है ।

(२) कर्ता–भोक्ता भ्रान्तिः– मन के धर्म कर्ता–भोक्ता को मैं आत्मा कर्ता–भोक्ता हूँ मानना कर्ता–भोक्ता भ्रान्ति है । इसे निवृत्त करते के लिये स्फटिक मणि एवं लाल, पीले, पुष्प की युक्ति है । मणि निर्मल होने पर भी पुष्प संयोग से लाल, पीली भासती है किन्तु पुष्प हटाने पर ज्यों कि

त्यों निर्मल ही पूर्ववत् भासमान होती है । इसी प्रकार अन्तःकरण कर्तृत्व एवं भोक्तृत्वदि धर्मों को जाग्रत तथा स्वप्न तक आत्म में आरोपित कर दिखाता है । सुषुप्ति अवस्था आने पर अन्तकरण आत्मानन्द में लीन हो जाने के कारण मन, बुद्धि के कोई भी धर्म प्रतीत नहीं होते हैं । अथात् हे हनुमान ! तुम अपने-आप (आत्मा)को अकर्ता-अभोक्ता, नित्य मुक्त और समस्त द्वन्द्वों से रहित सच्चिदानन्द स्वरूप ही जानो ।

(३) संग भ्रान्तिः- देह के धर्म षड़ विकार (जन्मना, रहना, बढना,युवा, वृद्ध तथा नाश) को अपना मानना संग भ्रान्ति है । इस भ्रान्ति की निवृत्ति हेतु घट+आकाश= घटाकाश एक सुन्दर युक्ति है । जैसे-उत्पन्न होकर नाश होनेवाले घट के विकारों से असंग, अखंड,आकाश का कोई भी सम्बन्ध घट मठ के साथ नहीं है, किन्तु अज्ञानी व्यक्ति को घट के गमनागमन, उत्पत्ति और नाश धर्म आकाश में भासते हैं, जबकि आकाश असंग एवं निर्विकार है । तैसे ही अखंड, निर्विकार, असंग, आत्मा में अज्ञानीजन देह के समस्त धर्मों का आरोप करते हैं । अस्तु हे हनुमान ! तुम अपने को असंग, अखंड तथा निर्विकार आत्मा ही जानो । देह के विकार तुम द्रष्टा, साक्षी आत्मा के धर्म नहीं है । यदि ब्रह्म का विकार जीव मान लिया तो फिर दूध से दही की तरह यह जीव पुनः ब्रह्म को अपने सूक्ष्म स्वरूप को कभी प्राप्त नहीं कर पाता । जैसे चाँवल का धान होना, दही का दूध होना, आटा का गेहुँ होना सम्भव नहीं होता । इसी तरह जीव भी ब्रह्म का विकार होता तो यह जीव ब्रह्मता को कभी प्राप्त नहीं होपाता । जबकि सभी शास्त्र जीव को ब्रह्म रूपता का उपदेश करते हैं । 'जिवो ब्रह्मैव केवलम्' ।

(४) विकार भ्रान्तिः- आत्मा को ब्रह्म का विकार मानना ही विकार भ्रान्ति है । भ्रान्ति की निवृत्ति हेतु मन्द अन्धकार में पड़ी रस्सी में सर्प के विकार की प्रतीति का द्रष्टान्त उचित है । जैसे-मन्द अन्धकार में दर्शकों को रस्सी में सर्प भ्रम होने के पूर्व, सर्प भासमान काल में तथा

प्रकाश होने पर सर्प भ्रम निवृत्ति के समय, इन तीनों कालों म सर्प विकार हुआ ही नहीं । एक निर्विकार रस्सी ही ज्यों की त्यों रहती है । इसी प्रकार अज्ञान के कारण ब्रह्म में जीव का विकार प्रतीत होता है; किन्तु ज्ञान होने पर एक अद्वितीय ब्रह्म सत्ता से भिन्न अन्य कुछ नहीं भासता है । ब्रह्म में जीव का विकार तीनों कालों में हुआ ही नहीं । अस्तुः हे हनुमान ! तुम निर्विकार एकरस ब्रह्म ही हो ।

(५) ब्रह्म से भिन्न जगत् एवं देह सत्यता की भ्रान्तिः– इस भ्रान्ति को दूर करने हेतु स्वर्ण–अलंकार की युक्ति सर्वात्तम है । स्वर्ण एवं अलंकार का कारण–कार्य दृष्टि से तो भेद है किन्तु उपादान कारण स्वर्ण से भिन्न अलंकारों की सत्ता नहीं है । मिट्टी से भिन्न घड़ा, खप्पर, इँट, दुर्गा, गणेश, सरस्वती, दीपकादि की कोई पृथक् सत्ता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक कार्य कारण स्वरूप ही होता है । इसी तरह कारण कार्य दृष्टि से जीव–ईश्वर में भेद है किन्तु देहादि दृश्य जगत् की सत्ता, उसके अभिन्न निमित्तोपादान कारण ईश्वर से भिन्न नहीं है । अतः हे हनुमान ! यहाँ तुम एक अद्वितीय ब्रह्म से भिन्न किंचित् भी अन्य वस्तु नहीं है ऐसा निश्चय से जानो । जैसे स्वप्न सृष्टि का स्वप्न साक्षी ही उपादान कारण एवं निमित्त कारण है । स्वप्न में साक्षी के अलावा किंचित् भी अन्य दृश्य विकार नहीं है । और वह साक्षी तुम हो ।

हे हनुमान ! वस्तु के मूल आधार को उपादान कारण कहते हैं । जिसके बिना उस पदार्थ का स्वरूप ही न दिखसके और न बन सके । जैसे–अलंकार के लिये लिये स्वर्ण, घड़े के लिये मिट्टी और कपड़े के लिये सूत उपादान कारण है ।

वस्तु, पदार्थ जिनीके सहयोग साधनों द्वारा निर्मित होते हैं और तिनका प्रवेश वस्तु में नहीं होता उसे निमित्त कारण कहते हैं, जैसे–सोनार, कुम्हार, जुलाहा एवं उनके यन्त्रादि का अलंकार, बर्तन, कपड़े आदि में प्रेवश नहीं है वे सभी कार्य से सर्वथा पृथक् ही रहते हैं ।

हे हनुमान ! कोई भी वस्तु निर्माणार्थ उपादान एवं निमित्त दो कारण

होने से वस्तु की सिद्धि होती है । किन्तु जगत् निर्माण के सम्बन्ध में उपादान तथा निमित्तकारण पृथक्-पृथक् नहीं है । यहाॅ तो जैसे स्वप्न का साक्षी ही स्वप्न नगर का उपादान एवं निमित्त कारण है, मकड़ी ही अपने जाले के लिये उपादान एवं निमित्त दोनों ही कारण है, तैसे इस सृष्टि का ईश्वर ही अभिन्न निमित्तोपादान कारण है, अन्य नहीं ।

ज्ञान की सप्त भूमिकाएँ

हे हनुमान ! बुद्धि, ज्ञान की सप्त भूमिकाऍ है, यथा (१) शुभेच्छा (२) सुविचारणा (३) तनुमानसा (४) सत्वापत्ति (५) असंसक्ति (६)पदार्थाभावनी (७) तुर्यगा जिसे मेरे पुज्य गुरुदेव वशिष्ठ जी ने मुझे समझाया था वही मैं तुम्हें कहता हूँ । उसे ध्यान पूर्वक श्रवण करो एवं अपनी स्थिति का स्वयं विचार करो कि सीता एवं मेरे द्वारा उपदेश पाकर तुम अपने को सप्तभूमिका में किस भूमिका पर पाते हो ।

१) शुभेच्छा: भोगों में ग्लानी होकर उनको त्यागकर महा तीर्थ रूप सद्गुरु के सम्मुख विवेक, वैराग्य, मुमुक्षुता साधन चतुष्टय हो आत्म कल्याण की जिज्ञासा करने को 'शुभेच्छा' कहते हैं ।

२) सुविचारणा: सदगुरु द्वारा श्रवण किये विषय का युक्ति द्वारा विचारकर अनित्य, दुःख एवं रूप विषयों से वैराग्य एवं नित्यानन्द रूप आत्मा में प्रीति का होना 'सुविचारणा' कहलाती है ।

३) तनुमानसा: श्रवण, मनन के द्वारा नित्यानित्य विचार के परिणाम स्वरूप मन की स्थूल पदार्थों की आसक्ति का अभाव एवं सूक्ष्म वस्तु आत्म चिन्तन में आसक्ति का होना

'तनुमानसा' कहलाती है ।

४) सत्त्वापति: शुभेच्छा, सुविचारणा तथा तनुमानसा इन ज्ञान की तीन भूमिका के अभ्यास से मन में बाह्य स्थूल जगत् के पदार्थों की आसक्ति का अभाव होना तथा नित्य वस्तु सच्चिदानन्द आत्मा में ही मन का लीन रहना ज्ञान की चतुर्थ भूमिका सत्त्वापत्ति कहलाती है ।

५) असंसक्ति: उपरोक्त चार भूमिका के अभ्यास से द्रव्य पदार्थ धन, पुत्र देहादि से ममता रहित मन की आत्मा में स्थिति को असंसक्ति कहते हैं ।।

६) पदार्थाभावनी: जैसे स्वर्णकार को नाना अलंकार एक स्वर्ण रूप ही भासते हैं, तैसे ही देहादि से लेकर ब्रह्म लोक पर्यन्त समस्त एक ब्रह्माकार ही भासमान होते हैं । यह ज्ञान की छठी भूमिका 'पदार्थाभावनी' है ।

७) तुर्यगा: चौथी भूमिका में जगत् की स्वप्नवत प्रतीति एवं छठी भूमिका में जगत् की सुषुप्ति अवस्थावत् अभाव रूप प्रतीति से रहित, एक अखंड ब्रह्म को आत्मारूप में अर्थात् मैं रूप जानता है उसे तुर्यगा कहते हैं ।

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह'

जिसे मन, वाणी, बुद्धि आदि कोई भी इन्द्रिय एवं अन्तःकरण जानने के लिये प्रवर्त होते हैं, किन्तु उनकी आत्मब्रह्म को जानने में मति काम नहीं करने से वापस आकर बैठ जाते हैं । वह अवाच्य, इन्द्रिय मनसागोचर, अनिर्वचनीय वस्तु आत्मा ही तुर्यगा या तुरीय है ।

हे हनुमान ! शुभेच्छा, सुविचारण तथा तनुमानसा यह तीन अवस्था तो साधन रूप है । सत्त्वापत्ति भूमिका तत्त्वज्ञान आत्म साक्षात्कार रूप होने से जीवन्मुक्ति के साधन रूप है । असंसक्ति, पदार्थाभावनी तथा तुर्यगा यह तीनों भूमिका जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दानुभूति के साधन रूप है ।

बुद्धि ज्ञान की सप्त भूमिकाएँ

<table>
<tr><th>भूमिका</th><th>अभ्यास</th><th>अवस्था</th><th>पात्र</th><th>काल</th><th>संज्ञा</th></tr>
<tr><td>शुभेच्छा</td><td>श्रवण</td><td rowspan="3">जा
ग्र
त</td><td rowspan="3">मु
मु
क्षु</td><td rowspan="3">सा
ध
न</td><td rowspan="3">अ
धि
का
री</td></tr>
<tr><td>सुविचारणा</td><td>मनन</td></tr>
<tr><td>तनुमानसी</td><td>निदिध्यासन</td></tr>
<tr><td>सत्वापत्ति</td><td>आत्म</td><td>स्वप्न साक्षात्कार</td><td>ज्ञानी</td><td>मुक्त</td><td>ब्रह्मवित्</td></tr>
<tr><td>असंसक्ति</td><td>मंद बुद्ध</td><td>सुषुप्ति</td><td>सिद्ध</td><td rowspan="3">जी
व
न
मु
क्त</td><td>ब्रह्मवित् वर</td></tr>
<tr><td>पदार्था–भावनी</td><td>बुद्ध</td><td>गाढ़</td><td>सिद्धतर सुषुप्ति</td><td>ब्रह्मवित् वरियान</td></tr>
<tr><td>तुर्यगा</td><td>प्रबुद्ध</td><td>तुरीय</td><td>सिद्धतम</td><td>ब्रह्मवित् वरिष्ठ</td></tr>
</table>

हे हनुमान ! सत्त्वापत्ति भूमिका वाला ज्ञानी तो उपदेशादि तथा जगत् व्यवहार स्वप्नवत् मिथ्या जान करता रहता है । असंसक्ति भूमिका वाला उपराम दशा को प्राप्त हो जाता है । इसलिये कोई उत्तम अधिकारी पुरुष को देख शुकदेव, जड़ भरतादि की तरह ज्ञान भी देते हैं । पदार्थाभावनी में तो पदार्थों का ही अभाव प्रतीत हो जाने से बोलना, चलना,देखना आदि क्रियाएँ प्राय: बन्द-सी हो जाती है । तुर्यगा सप्त भूमिका में तो शरीर आयु केवल २१ दिन ही रह जाती है; क्योंकि भोजन, पानी सब छूट जाता है । उसे बाह्य चेतना नहीं रहती है ।

हे हनुमान ! प्रथम तीन भूमिका तक या किसी भी एक भूमिका में जाने पर यदि मुमुक्षु का प्राण छूट गया तो, उसे पुनः आत्म साक्षात्कार कराने वाली चौथी भूमिका हेतु किसी श्रीमंत सदाचारी धनाढ्य घर में या वैराग्यवान साधक किसी ज्ञानी कुल में जन्म प्राप्त करता है । यह सदाचारी श्रीमंत गृहस्थ के यहाँ जन्म लेना तो सहज होता है किन्तु वैराग्यवान ज्ञानी कुल में जन्म मिलना बड़ा ही कठिन होता है । क्योंकि जिस कुल में ज्ञानी स्त्री-पति होंगे उन्हें भोगों से सहज उपरामता रहती है, फिर उनके मध्य सम्भोग न होने से सन्तान उत्पत्ति की कोई कल्पना कैसे हो सकती है ? कोई करोड़ों में कोई एक ऐसे दम्पत्ति किसी भाग्यशाली, योगभ्रष्ट संस्कारी जीव को जन्म प्रदान करते हैं । वहाँ जन्म पाकर अपने पूर्व जन्म की अतृप्त भोग वासना को या बुद्धि मंदता दोष को दूर कर अपने ज्ञान की आगमी चतुर्थ भूमिका हेतु साधन में अग्रसर हो जाता है ।

अयमात्माब्रह्म, जीवो ब्रह्मेव ना पर ।

हे प्रिय हनुमान ! यह जीव स्वभावसे ब्रह्मस्वरूप ही है । जीव-ब्रह्म सत्ता में किंचित् भी भेद नहीं है । जो आत्मा को ब्रह्मसत्ता से भिन्न बतलाने व मानने वाले हैं, उन्हें मूर्ख ही जानना चाहिये ।

आत्योसाव्योहं इति न स वेद यथा पशुरेव स देवानाम ।।

बृह उप. १/४/१०

अर्थात् जो यह मानता है कि मैं अन्य हूँ और परमात्मा अन्य है । वह वास्तव में परमात्मा को नहीं जानता है । उसे देवताओं का पशु अर्थात् सेवक ही जानना चाहीये ।

हे हनुमान ! ब्रह्म स्वरूप आत्म को अज्ञानवश अपने प्रति अब्रह्मत्व का भ्रम किस प्रकार का है, इसका द्रष्टान्त सुनो । एक माता ने हाथ के कंगन को कार्य करते समय कलाई से ऊपर भुजा पर चढा दिया । काम समाप्त होने पर जब हाथ धोने के समय कलाई में कंगन न देख, घर में सब जगह खोजने लगी और जब नहीं मिला तो रोने लगी । उसे रोते देख सास ने पूछा–बहू क्यों रो रही हो ? बहू ने कहा– मेरा कंगन अभी–अभी कहीं खो गया है । उसे सब स्थान खोज लिया, किन्तु कहीं नहीं मिला । तब सासने कहा– तेरे भुजा पर देख, यह ब्लाउज की बांह पर क्या है ? तब बहू उसे वहाँ देख बहुत हर्षित हुई और कहा ओह ! मेरा कगंन मिल गया। इस प्रकार पहले से ही प्राप्त कंगन की ही प्राप्ति हुई; किसी अप्राप्त कंगन की नहीं । ठीक इसी प्रकार हे हनुमान ! परमानन्द स्वरूप आत्मा के बारे में जीव को अज्ञान के कारण ऐसी भ्रान्ति होती है कि मेरा असली स्वरूप आत्मा, परमानन्द रूप नहीं है; किन्तु परमानन्द स्वरूप तो ब्रह्म है । वह मुझे कब एवं कहाँ मिलेगा ? उस ब्रह्म का और मेरा वियोग हो गया है, अब निष्काम कर्म, उपासना, योग एवं ज्ञानादि साधन करके उस ब्रह्म को में प्राप्त करुँगा ।

इस प्रकार की भ्रान्ति बहुत से अज्ञानी मनुष्यों को हो रही है एवं वे साधन कर–कर दुःखी पुरुष किसी सदगुरु की शरण में जाकर अपना दुःख प्रकट करते हैं कि हे सद्गुरु भगवान । मुझे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति नहीं होने से मैं बहुत दुःखी हूँ । मैं ने सभी तीर्थ, मन्दिर, नदी, पर्वत–ध्यान समाधि आदि साधनों का सेवन किया किन्तु किसी स्थल एवं साधन द्वारा भी मुझे अखंडानन्द नहीं मिला । तब वे तत्त्वदर्शो श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सदगुरु उस को '**तत्त्वमसि**' (वह तू है) यह महावाक्य उपदेश कर, ब्रह्म का अपरोक्ष

अनुभव करा देते हैं । हे वत्स ! तेरी यह आत्मा स्वयं ब्रह्म ही है । ''अयमात्मा ब्रह्मा'' इस वेद महावाक्य द्वारा जिज्ञासु को प्रमाणित कर उसे अपने आत्म स्वरूप में अंह ब्रह्मास्मि, सोऽहम्, शिवोऽहम् रूप में निश्चय करा देते हैं । तब यह सतगुरु कृपा का अनुभव कर कहता है कि अब गुरु कृपा से मुझे ब्रह्मानन्द की प्राप्ति एवं दुःख की निवृत्ति हो गई, किन्तु यह कोई नूतन वस्तु की प्राप्ति नहीं बल्कि नित्य प्राप्त ब्रह्म की प्राप्ति एवं नित्य निवृत्त बन्धन की ही निवृत्ति कही जाती है ।

हे हनुमान ! तत्त्वमसि साधन चतुष्टय अधिकारी अपने कल्याणार्थ कर्म एवं उपासना के फल स्वर्गादि लोकों को नाशवान् एवं बन्धन रूप जानकर उनसे भली प्रकार उपराम होकर जो साधन से साध्य नहीं है, ऐसे नित्य सिद्ध आत्म-तत्त्व को जानने हेतु-

परीक्ष्य लोकान कर्म चितान ब्राह्मणो ।
निर्वेदमायाद न अस्ति अकृतः कृतेन ।।

तद्विज्ञानार्थ स गुरुमेवाभिगच्छेत ।
समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम ।। मुण्ड. उप.

किसी ब्रह्मदर्शी सदगुरु के पास हाथ में उनकी सेवा के योग्य सामग्री लेकर जावें । मुमुक्षु फिर उनसे श्रद्धा पुर्वक पूछें कि- हे गरुदेव ! मैं कौन हूँ । परमात्मा क्या है ? माया तथा अविद्या का क्या कार्य भेद है ? मैं परमात्मा को किस प्रकार प्राप्त कर सकूँगा ?

श्रवणायापि बहुभियों न लभ्यः
श्रृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।

आश्चर्या वक्ता कुालोऽस्यः
लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।

हे हनुमान ! तुमने जो यह अपने कल्याणार्थ परम गूढ तत्त्व को जानने की जिज्ञासा प्रकट की उसे मैं सुनकर बहुत ही प्रसन्न हूँ; क्योंकि

ऐसी इच्छा का होना महान पुण्योदय के परिणाम स्वरूप ही होता है । ऐसे गूढ़ तत्त्व का उपदेश करने वाला महापुरुष भी जगत् में आश्चर्य रूप होता है । प्रायः बहुतों को तो यह आत्मतत्त्व श्रवण करने को भी नहीं मिनता है, और बहुत से तो नाना मतों का सुन लेने से तर्क जाल में घिरे होने के कारण इस गूढ़ तत्त्व को समझ भी नहीं पाते हैं । किन्तु मैं तुम्हारी श्रद्धा एवं अधिकारीता को देख अवश्य कहूँगा ।

तत्त्वमसि

हे हनुमान ! वह तत्त्वदर्शी सद्गुरु उस अधिकारी मुमुक्षु को 'तत्त्वमसि' वह परमात्मा तू ही है, इस महावाक्य का उपदेश करता है, तब उसको ततथ पद का वाच्यार्थ ईश्वर एवं त्वम पद के वाच्यार्थ जीव के चिदाभास में जिस प्रकार भेद होता है, वह तुम्हें तुलनात्मक कोष्टक द्वारा बतलाता हूँ ।

प्रकाशक शुद्ध ब्रह्म

माया उपाधि ईश्वर चिदाभास	अविद्या उपाधि जीव चिदाभास
सर्वज्ञता	अल्पज्ञता
समर्थ	असमर्थ
सर्वशक्ति	अल्पशक्ति
परोक्ष	अपरोक्ष
स्वतन्त्र	कर्माधीन
व्यापक	परिच्छिन्न
फलदाता	कर्ता-भोक्ता
अजन्मा	जन्म-मृत्यु
आनन्द	दुःखी
मुक्त	बद्ध
अधिष्ठान ईश्वर साक्षी ब्रह्म	अधिष्ठान जीव साक्षी आत्मा

सत्त्व प्रधान माया के धर्म से तमः प्रधान माया (अविद्या) के धर्मों में अन्तर है, किन्तु अधिष्ठान ईश्वर का साक्षी परमात्मा एवं अधिष्ठान जीव का साक्षी कूटस्थ आत्मा में कोई भेद नहीं है । जैसे-घट और मठ नाना उपाधि होने पर भी आकाश एक है ।

हे हनुमान ! अब तुम्हें ईश्वर एवं जीव के देश, काल, वस्तु, शरीर, अभिमान, कार्य, वाच्यस्वरूप एवं लक्ष्य-स्वरूप तथा अध्यास को समझता हूँ ।

	'तत' ईश्वर	**त्वम' जीव**
देश	अव्याकृत माया	चक्षु, कंठ, हृदय
काल	उत्पति, स्थिति, लय	जाग्रत,स्वप्न, सुषुप्ति
वस्तु	स्त्त्व, रज, तम	स्थूल,सूक्ष्म आनन्द अज्ञान भोग
शरीर	विराट,हिरण्यगर्भ, अव्याकृत	स्थूल, सूक्ष्म, कारण
अभिमानी	वैश्वानर, सूत्रात्मा, अंतर्यामी	विश्व, तैजस, प्राज्ञ
कार्य	एक से अनेक होकर जीव रूप में प्रवेश	जाग्रत से लेकर मोक्ष पर्यन्त
वाच्य स्वरूप	माया,आभास और अधिष्ठान परमात्मा	अविद्या आभास और अधिष्ठान कूटस्थ आत्मा
लक्ष्य स्वरूप	माया और चिदाभास का परित्याग करके शेष रहे अधिष्ठान ईश्वर साक्षी शुद्ध ब्रह्म	अविद्या और चिदाभास का परित्याग करके शेष रहे अधिष्ठान जीव साक्षी आत्मा
अध्यास	ब्रह्म की सत्यता का संसर्ग अध्यास ईश्वर में होने से	कूटस्थ आत्मा की सत्यता का मिथ्या जीव

	ईश्वर सत्य प्रतित होता है ।	के साथ संसर्ग अध्यास के कारण जीव सत्य प्रतीत होता है ।
	ईश्वर का स्वरूप अध्यास ब्रह्म में होने के कारण ईश्वर का सृष्टि कार्य ब्रह्म में प्रतीत होता है, जबकि ब्रह्म निष्क्रिय है ।	जीव के कर्ता-भोक्ता धर्म का आत्मा में श्वरूप अध्यास होने के कारण मैं कर्ता-भोक्ता आत्मा हूँ ऐसा भान होता है, जबकि मैं अकर्ता अभोक्ता हूँ ।

हे हनुमान ! मैं तुम्हें परमात्मा, आत्मा एवं जीव के स्वरूप को आकाश के द्रष्टान्त द्वारा समझाता हूँ । तुम उसे ध्यान पूर्वक श्रवण करो ।

जैसे जलाशय में आकाश के तीन भेद स्पष्ट दिखाई देते हैं- (१) महाकाशः- जो सर्वत्र व्यापक है (२) जलावच्छिन्न आकाशः- जो जलाशय के आकार को घेरे हुए है, (३) प्रतिबिम्बाकाशः- जो जल में ही प्रतिबिम्बित हो रहा है । ईसी प्रकार हे हनुमान ! चेतन में भी तीन प्रकार को काल्पनिक भेद जानों ।

(१) सर्वत्र सामान्य चेतन महाकाशवत् ।

(२) जो बुद्धि के घेरे में है, जलावच्छिन्न आकाशवत ।

(३) जो बुद्धि में प्रतिबिम्बित होता है, प्रतिबिम्बाकाश्वत इसे ही आभास चेतन जीव या चिदाभास कहते हैं ।

हे हनुमान ! चेतन के इन तीनों भेदों में केवल चिदाभास सहित बुद्धि ही समस्त क्रियाओं की कर्ता है । किन्तु अज्ञानी जन भ्रान्तिवश अन्तःकरण (आभास चेतन) के धर्म कर्ता-भोक्ता, सुख-दुःख, पुण्य-पाप, बन्ध-मोक्ष इत्यादि साक्षी, आत्मा (मैं) पर आरोपित करते हैं । जैसे लाल,

पीले, हरे पुष्पों के रंग स्वच्छ मणि पर प्रतिबिम्बित होते हैं । या घट के धर्म असंग आकाश पर आरोपित करते हैं ।

हे हनुमान ! जब किसी सदगुरु द्वारा देहाभिमानी जीव को 'तत्त्वमसि' (तू वह है) आदि महावाक्यों द्वारा पूर्ण महाकाशवत् सामान्य चेतन ब्रह्म के साथ एकता बतलायी जाती है । तब महावाक्यों में जीव-ईश्वर के विरोधी अशों का शोधन, भाग-त्याग लक्षणा द्वारा करके, अविद्या-माया उपाधि से जीव एवं ईश्वर के चिदाभास में आये अल्पज्ञ-सर्वज्ञता, अल्पशक्ति-सर्वशक्ति, कर्ता-भोक्ता, फलदाता, बद्ध-मुक्तादि, विरोधी अंशों का त्याग करके जीव का एकता का सोऽहम रूप में ज्ञान उदय हो जाता है; उस समय कार्यों सहित अविद्या नष्ट हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं ।।५0।।

हे हनुमान ! जो उपराक्त तत्त्व को सदगुरु से श्रवण, मनन कर निजात्म स्वरूप की सोऽहम रूप उपासना में लग जता है, वह ब्रह्म स्वरूप ही हो जात है.

'ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति' (वेद)

'जानत तुमहि तुमहि होई जाई' (रामायण)

परन्तु जो लोग आत्मराम की उपासना न कर इधर-उधर अनात्मा में खोज करते हैं, या शास्त्र रूपी गड्ड्‌ में पड़े भटकते रहते हैं, उन्हें सौ जन्मों तक भी न तो यह गूढ आत्म ज्ञान होता है और न मोक्ष की प्राप्ति होती है। क्योंकि यह वेद का सिद्धान्त है ।

पाषाण लोह मणिमृण्मय विग्रहेषु पूजा पुनर्जनन भोगकारी मुमुक्षोः ।
तस्माद्यतिः स्वहृदयार्चनमेव कुर्यात् बाह्यचार्चनं परिहरेद पुनर्भवाय ।।

-२/२६-मैत्रेयूपनिषद्

पत्थर, सोना, चाँदी, लकड़ी, मिट्‌टी आदि धातु द्वारा बनाई मूर्ति यों की पूजा मोक्ष की इच्छा करने वालों मुमुक्षु साधक को जन्म-मरण दिलानेवाली साधना है । इसलिये जन्म-मरण से मुक्ति पाने के लिये बाहरी

पूजा को त्यागकर हृदय में ही आत्मा की सोऽहम् भाव द्वारा पूजा करनी चाहिये ।

आत्मतीर्थ समुत्सृज्य बाहिरतीर्थानि योब्रजेत् ।
करस्थं समहारत्नं यक्तत्वा काचं विमार्गते ।।

–४/५०–जावालदर्शन उपनिषद

जो अज्ञानी अपने हृदय स्थित आत्मदेव का परित्याग करके बाहरी जल, पाषाण, धातु से निर्मीत तीर्थ मन्दिर, मुर्ति में परमात्मा को खोजता फिरता है वह मानो हाथ में रखे हुए रत्न का परित्याग करके कांच को पकड़ना चाहता है ।

तीर्थ दाने जपे यज्ञे काष्ठे पाषाण के सदा ।
शिवं पश्यति मूढात्मा शिवे देहे प्रतिष्ठिते ।।

४/५७ जाबाल.द. उप.

कल्याणमय परमात्मा इसी देह में सर्वसाक्षी रूप में विराजमान है । उसे न जानने वाला मूर्ख तीर्थ,मन्दिर, काष्ठ, पाषाण आदि मूर्तियों में अथवा यज्ञ, जप, तपादि में ही परमात्मा को खोजा करता है ।

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रतिमामुनयोगिनाः ।
अज्ञानां भावनार्थय प्रतिमाः परिकल्पितः ।।

–४/५१–जावालदर्शन उपनिषद

ज्ञानी जन तो परमात्मा के दशर्न अपनी आत्मा में ही सोऽहम् भाव द्वारा करते हैं । प्रतिमाओं में अथवा तीर्थ,मन्दिर में कभी नहीं । प्रतिमाओं की कल्पना तो अज्ञानी जनों के हृदय में भगवान के प्रतिभावना जागृत हो जाने के लिये की गई है ।

देहो देवालयः प्रोक्तः स जीवः केवलः शिवः ।
त्यजेदज्ञान निर्माल्यं सोऽहं भावेन पूजयेत ।। १० स्कन्दोपनिषत्

देह को ही देवालय समझना चाहिये । उसमें विराजित जीवात्मा ही शिव रूप है । अज्ञान रूप निर्माल्य को दूर करके वही शिव मैं हूँ । इस प्रकार दृढ़ भावना द्वारा उसकी अभेद उपासना करना चाहिये अर्थात् सोऽहम् भाव से पूजा करना है ।

योऽहं सर्वेषामधिष्ठाता सर्वेषां च भूतानां पालकः । सोऽहं पृथिवी । सोऽहं आपः । सोऽहं तेजः । सोऽहं वायुः । सोऽहं कालः। सोऽहं दिशः । सोऽहमात्मा । मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । ब्रह्मविदाप्नोति पर... ।।२ ।। भस्मजाबालोपनिषत् ।

जो चराचर का अधिष्ठान है, सब भूत प्राणियों का पालक है, वही मैं पृथ्वी हूँ, वही मैं जल हूँ, वही मैं तेज हूँ, वही मैं वायु हूँ, वही मैं सबका काल हूँ, वही मैं दिशा हूँ । वही मैं शरीरों में आत्मा हूँ । मेरे में ही यह सब प्रतिष्ठित है । इस प्रकार ब्रह्मज्ञानी ही परमपद को प्राप्त होकर भव बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

'ज्ञानादेव तु कैवल्यम्'

ज्ञान मोक्षप्रद वेद वखाना ।
जगत् आत्म प्राणपति रामा ।
तासु विमुख किमि लहि विश्रामा ।

जब हनुमान ने पूछा प्रभो ! इन जीवों को कैसे शान्ति प्राप्त हो सकेगी ? कृपा करके बतलावे ।

सन्मुख होहिं जीव जब मोहि,
जन्म कोटि अघ नाशहुँ तबहि ।।

जब जीव अनात्मा से दृष्टि को मोड़ आत्मा में ही मैं बुद्धि करता है, तब यह उसी प्रकार तत्काल अपने पाप-ताप, शोक से मुक्त हो जाता है । जैसे-कोयला अग्नि में गिरकर अपनी कालिखता से मुक्त होकर अग्नि रूप हो जाता है ।

परमात्मा पर पर्दा नहीं

हे हनुमान ! परमात्मा तो खुले आकाशवत् सर्वत्र ओत-प्रोत,भीतर-बाहर, ऊपर-नीचे, दाँये-बाँये है ।

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् दक्षिणतः च उत्तरेण ।
अधः च उर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वं इदं वरिष्ठम् ।।

मुण्डको २/२/११

परमात्मा पर किसी प्रकार का आवरण नहीं है । यदि परमात्मा पर आवरण होता तो अनादि काल से अब तक किसी एक भी भक्त द्वारा हटा दिया जाने पर हम सब उसका दर्शन बिना साधन, भजन, प्रतिक्षा किये सहज कर लेते । जैसे-मन्दिर में पुजारी ठाकुर मूर्ति के सम्मुख पर्दा हटाते ही सभी दर्शक ठाकुर मूर्ति के दर्शन कर लेते हैं । हे हनुमान ! यहाँ पर्दा परमात्मा पर नहीं पत्युत साधक की अपनी आँख पर ही है । इसलिये, परमात्मा सर्व काल, सर्व रूप एवं सर्वत्र होते हुए भी बिना सद्गुरु से ज्ञान चक्षु प्राप्त किये उसे कोई भी नहीं देख सकता । **या तन्तोऽप्यकृतात्मनो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ।** १५/११ अज्ञानी तो मंत्र, माला, पूजा, पाठादि यत्न करते हुए भी इस देहस्थित आत्मा को नहीं जानते हैं । हे हनुमान ! तुम विश्वास करो कि मैं भी अपने श्री गुरुदेव से ही ज्ञान चक्षु प्राप्त करके उस परमात्मा को आत्मा रूप में सर्वत्र अनुभव कर रहा हूँ, और तुम भी उसी ज्ञान चक्षु से सर्वत्र अनुभव करने में समर्थ हो सकोगे ।

विमूढा नानु पश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञान चक्षुषः । १५/१० गीता

हे हनुमान ! जब विवेक, वैराग्य, षटसम्पत्ति मुमुक्षुता साधन चतुष्टय कोई अधिकारी किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु के पास ब्रह्मानुभूति की अभिलाषा लेकर जाता है, तब वे उसे विचार नेत्र 'ज्ञान चक्षु' प्रदान करते हैं ।

दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम । ११/८ गीता

तभी कोई उन अखंड, निराकार परमात्मा का अनुभव आत्मारूप में कर पाता है । क्योंकि-

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः ।
मूढोऽयं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम ।। ७/२५ गीता

सभी जीवों की बुद्धि अविद्या-अज्ञान के आवरण से आवृत रहने के कारण सर्वव्यापी अजन्मा, अविनाशी, निराकार, परमात्मा को ज्ञान चक्षु के अभाव में नहीं जान पाते हैं, बल्कि उन्हें जन्मने एवं मरने वाला मानते हैं ।

मुकर मलिन अरु नयन विहीना ।
राम रुप देखहिं किमि दीना ।।

हे हनुमान ! जिसका आहार-विहार सात्विक जीवन नहीं है एवं सत्संग के अभाव में विचार नेत्र भी नहीं खुले हैं और जो मल, विक्षेप तथा आवरण दोष से घिरे हुए हैं, ऐसे मलिन मन रूप दर्पण में उन अनादि, अनन्त, अखंड, निराकार, आत्मराम को नहीं देख सकेंगे ।

'निर्मल मन जन सो मोहि पावा'

हे प्रिय वत्स ! सूर्य पृथ्वी से करीब १३ लाख गुणा बड़ा एवं १० करोड़ माइल दूर है । इतना विशाल सूर्य होने पर भी आँख में एक छोटी सी कंकरी, मिट्टी या बाल आ जाने से आँख से विराट सूर्य ओझल होता है । ग्रीष्म या वर्षा काल में एक छोटा-सा बादल का टुकड़ा आखों के सम्मुख आ जाने से भी विराट सूर्य आँखो से अदृश्य हो जाता है अर्थात्

वह होते हुए भी नहीं दिखाई पड़ता है । कोई पुरुष दोपहर के समय अपने छाते से सर ढक ले एवं कहे कि मेरे छाते ने सूर्य को ढक लिया तो क्या उसका यह कहना विवेक पूर्ण होगा ? भला एक मिटर लम्बा-चौड़ा कपड़े का टुकड़ा इतने बड़े व्यापक सूर्य को कैसे ढक सकेगा ? छाते के द्वारा तो केवल दर्शक की आँख पर ही आवरण होता है । इसी प्रकार जीव की बुद्धि पर ही अज्ञान का पर्दा पड़ा है । ब्रह्म तो सूर्य से भी अनन्त गुना व्यापक है ।'हरि व्यापक सर्वत्र समाना' फिर भला ऐसे विशाल परमात्मा पर पर्दा करने की क्षमता किस में हो सकती ह ? किन्तु हे हनुमान ! जीव अपने आँख का उपचार तो किसी सद्‌गुरु के पास जाकर कराते नहीं है, इसलिये परमात्मा नहीं है, परमात्मा नहीं दिखाई देता है, इस प्रकार मिथ्या दोषारोपण करते रहते हैं ।

निज अज्ञान राम पर धरहीं ।

भागो नहीं जागो

हे हनुमान ! परिच्छिन्न, एकदेशीय, दूरस्थ वस्तु को प्राप्त करने हेतु ही जीव को साधन करना पड़ता है । बिना साधन किये ज्ञान मात्र से कोई भी वस्तु कभी भी नहीं मिल पाती है । जैसे– तुम्हे मेरे प्रिय भ्राता लक्ष्मण के उपचार के लिये संजीवनी बूटी का ज्ञान एवं स्थान तो ज्ञात था; किन्तु द्रोणागिरि पर्वत पर बिना पहुँचे व लाये बिना, वह तब तक प्राप्त नहीं हो सकी थी । इसी प्रकार मुझे भी साता का पता जटायुराज द्वारा ज्ञात हो जाने पर रावण सीता को उठाकार ले गया है, लेकिन जब तक उसको पाने के लिये हम सबने साधन नहीं किया होता तो, केवल जानने से वह मुझे उपलब्ध नहीं हो पाती ।

हे हनुमान ! बिना किसी साधन किये साध्य वस्तु, केवल जानने मात्र से तभी हो सकती है, जो वस्तु पूर्व से है । परमात्मा अपरिच्छिन्न, अखंड एवं व्यापक रूप है । अर्थात् जो सर्व देश, सर्बकाल तथा सब वस्तु रूप में विद्यामान है इसलिय, ऐसा अखण्ड परमात्मा केवल जानने मात्र से ही सब को उपलब्ध सा हो जाता है । और वह वस्तु एकमात्र मैं (आत्मा) ही है । अस्तुः केवल ज्ञान के द्वारा आत्म वस्तु ही मिल सकती है ।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य बरान निवोधत ।

१/३/१४८ कठ.उप.

अर्थात् इस प्रकार अखंड, व्यापक,नित्य, सर्वरूप परमात्मा के पाने के लिये 'भागो नहीं जागो' । जैसे–बिजली एक शक्ति है ? इसीके ज्ञान हेतु हम यदि इन बिजली के बल्ब, हीटर, कूलर, टी. वी. रेडिओ के सम्मुख रहेंगे तो हमें मात्र गर्मी, शीतलता, शब्द, रूप प्रकाश इत्यादि विषयों की ही जानकारी मिलेगी; किन्तु बिजली की नहीं । बिजली ज्ञान के लिये तो इन समस्त विद्युत उपकरणों, मशीनों के पीछे की ओर दृष्टि करना होगी; जिसकी शक्ति पाकर यह सब अपना–अपना कार्य में समर्थ होते हैं । वह दो तारों में छिपी अव्यक्त है । अतः इस सिद्धान्त को सदा याद रखें कि शक्ति का दर्शन नहीं अनुभव ही किया जाता है । जैसे पवन, सुगन्ध, स्वाद, चुम्बकीय तरंगे आदि ।

हे हनुमान ! परमात्मा के जानने हेतु हमें श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना तथा ध्रणेन्द्रिय के सम्मुख नहीं होना चाहिये । इन पंच ज्ञानेन्द्रिय के सम्मुख होने स तो केवल इन इन्द्रियों के शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध धर्म को ही जान पायेंगे; किन्तु इन गुण धर्मो आत्मा को नहीं जान सकेंगे । यदि हमें उस परम शक्ति का अनुभव करना है, जिसकी शक्ति का अंश पाकर यह सब देह संघात् कार्य करता है । तो फिर हमें इन शरीर, प्राण, इन्द्रिय तथा मन बुद्धि के पीछे दृष्टि ले जाना होगी जो इन सबका द्रष्टा साक्षी है वही आत्मा है । वह तू है । जैसा श्रुति का कथन है–

यन्मनसा न मनुते येनाऽहुर्मनो मतम ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। केनोपनषद १/५

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुंषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। केनोपनषद १/६

अर्थात् मन एवं आँखादि इन्द्रियाँ जिसे नहीं जान पाती है, बल्कि जिसका शक्ति के द्वारा समस्त देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मनादि जाने जाते हैं एवं अपना–अपना कार्य करते हैं वह ब्रह्म है वह तुम हो । मन, बुद्धि आँखादि द्वारा देखे, सोचे जानेवाले विषय को तुम ब्रह्म मत जानो, वह ब्रह्म नहीं है ।

तुम द्रष्टा हो

न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान् ।
एषां साक्षिणमात्मानं चिद्रुपं विद्दि मुक्तये ।।

अष्टा.गीता. १/३

क्षिति जल पावक गगन समीरा ।
पंच रचित यह अधम शरीरा ।। रामायण

हे हनुमान ! तुम पृथ्वी, जल, तेज, वायु तथा आकाश में से कोई भी एक भूत नहीं हो । यह पांचों महाभूत तुम्हारे दृश्य हैं । इसलिये इन पांचों भूतों से बना यह पाचं भौतिक दृश्य शरीर भी तुम नहीं हो । यह शरीर क्षण-क्षण में परिणाम को प्राप्त होता जाता है । विचार कर देखो जो बाल्यावस्था का शरीर होता है वह कुमारावस्था में नहीं रहता है । कुमारावस्था वाला शरीर यूवा अवस्था में नहीं रहता है । यूवा अवस्था वाला शरीर बुढापे में नहीं रहता है । किन्तु आत्मा सब अवस्थाओं में ज्यों का त्यों आकाशवत् व्यापक, असंग, निर्विकार एक रस ही रहता है । इसी कारण वृद्ध अवस्था में बाल्यावस्था, किशोरावस्था, यूवावस्था तथा प्रौढावस्था का प्रत्यभिज्ञज्ञान भी होता है । यदि बाल, किशोर, यूवा, प्रौढावस्था का अनुभव न किया होता तो वृद्धावस्था में उनका स्मरण नहीं

हो पाता । यह सिद्धान्त है कि अनुभव कर्ता को ही स्मरण होता है । अन्य के अनुभव का अन्य को स्मरण नहीं होता । यदि ऐसा सम्भव होता तो किसी एक के समाधि या मोक्षानन्द अनुभूति से अन्य सभी को समाधि आनन्द प्राप्त हो जाता । किन्तु ऐसा नहीं है ।

हे हनुमान ! अब तुम यह निश्चय करो कि जो देह पंच भूत का है वह मेरा दृश्य होने से मैं नहीं हूँ । इसी प्रकार बाल्यवस्था, किशोरावस्था, यूवावस्था, प्रौढावस्था, वृद्धावस्था, मूर्च्छा अवस्था, समाधि अवस्था, सुषुप्ति अवस्था, जाग्रत आदि अवस्थाऐं मेरी दृश्य होने से में नहीं हूँ । मैं समस्त दृश्यों का एकमात्र द्रष्टा हूँ ।

हे हनुमान ! अपने शरीर के पैर से सिर तक के प्रत्येक अंगों का नाम लेकर चिन्तन करो । जैसे यह मेरा पैर है, लेकिन मैं पैर नहीं हूँ, पैर से भिन्न पैर का साक्षी हूँ; यह मेरा मेरी टांग है लेकिन मैं टांग नहीं, टांग से भिन्न टांग का साक्षी हूँ ।

अब सम्पूर्ण शरीर का चित्र दर्पण में या मन में देख निश्चय करो कि यह 'हनुमान' नाम रूप शरीर मैं नहीं हूँ, जब यह शरीर मैं नहीं, तब इसका जन्म-उम्र, बाला, यूवा, वृद्धावस्था, रोग-निरोग, दुर्बल, मोटा, नाटा, लम्बा आकार एवं मृत्यु भी मेरी नहीं है ।

जब मैं शरीर नहीं तो इसकी जाति, आश्रम भी मेरे नहीं है । पिता-माता, भाई-बहन, पति-पत्नी, पुत्रादि भी मेरे नहीं है । मैं इन उपाधियों का द्रष्टा निरूपाधिक साक्षी आत्मा हूँ।

इस प्रकार चिन्तन करो कि मैं दसों ज्ञान एवं कर्म इन्द्रियॉ भी नहीं हूँ । जैसे मैं कान नहीं, कान का द्रष्टा हूँ, मैं आँख नहीं आँख का द्रष्टा हूँ । मैं वाक नहीं, वाणी का द्रष्टा हूँ । मैं हाथ, पाँव नहीं हूँ, मैं हाथ पाँव का द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ ।

हे पवनसुत हनुमान ! निश्चय करो कि मैं अंजनी पुत्र प्राण रूप हनुमान भी नहीं हूँ बल्कि प्राणों का द्रष्टा हूँ ।

हे हनुमान ! प्राणवायु को अन्दर आते समय मन में निश्चय करना चाहिये कि 'सो' प्राणवायु प्रवेश कर रहा है एवं बाहर निकलते समय विचारो कि 'हम' की ध्वनि हो रही है ।

हकारेण बहिर्याति, सकारेण विशेत पुनः ।
हसं सोहं इत्यमूं मंत्र, जीवो जपतिः सर्वदा ।।

हे हनुमान ! इस प्रकार सभी प्राणी इस सोऽहम् मन्त्र का स्वभावतः बिना जपे जाप कर रहे हैं । इस अजपा जाप में मन को लगाकर बुद्धि से इसके अर्थ का भी चिन्तन करना चाहिये 'सो' अर्थात् सर्वत्र अस्ति, भाति, प्रिय रुप से अखंड, व्यापक सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म तथा 'अहम्' अर्थात् मैं सबका साक्षी सामान्य चेतन । इसका सम्पूर्ण अर्थ हुआ मैं साक्षी सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म हूँ । फिर यह मंत्र भी प्राणों में हो रहा है । मैं इसके भावभाव का भी साक्षी इससे भिन्न हूँ ।

मन को भी इसी प्रकार दृश्य मानो एवं अपने को मन का द्रष्टा, साक्षी, असंग, निर्विकार, आत्मा ही जानो । सुख दुःख, पाप-पुण्य, चंचल-शांत, बन्ध-मोक्ष इसी दृश्य मन के धर्म जानो ।

हे हनुमान ! तुम इसी प्रकार अपने को बुद्धि का भी साक्षी जानो । बुद्धि कुशाग्र, चंचलता, मंद या मूढ हो तुम उसे जानते हो । अतः मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार चारों अन्तःकरण की वृत्तियों के प्रकाशक तुम सच्चिदानन्द आत्मा ही अपने को जानो ।

यह सत, चित,आनन्द स्वरूपता से केवल इस हनुमान शरीर में ही तुम विद्यामान नहीं हो, बल्कि, पुष्पमाला में सुत्रबत सर्व साक्षी, सर्व द्रष्टा सर्वाधिष्ठान परमात्मा हो । जहाँ-जहाँ मन वृत्ति जावे, वहाँ- वहाँ नाम रूप मायांश जानकर उनका त्याग करो एवं शेष रहे अस्ति, भाति, प्रिय रूप को अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का ही विवर्त जान वह मैं हूँ **'सोऽहम्'** इस अभेद भाव का चिन्तन करें । इसी सहज चिन्तन को सहज समाधि कहते हैं ।

यत्र यत्र मनोयाति तत्र तत्र समाधयः

यही गोपियों की सहजावस्था थी । 'जित देखु तित श्याम' । राम भक्तों को भी यही अनुभूति है 'सियाराम' मय सब जग जानी' ।

हे हनुमान ! यह परम गोपनीप तत्त्व नहीं जानने के कारण ही अनादिकाल से जीव को देह,प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि देह संघात में अपने का अहंकार (तादात्म्य-अध्यास) हो रहा है, उस अध्यास से ही जीव अपने को देह रूप मानकर जन्म-मरण के कष्टों को भोग दुःख पाता भटक रहा है । इस अध्यास का कारण आत्मा का अज्ञान है । जब सद्गुरु की कृपा से यह अपने को देह से पृथक् द्रष्टा, साक्षी, आत्मा रूप से पहचान लेता है, तभी अज्ञान के नाश होने से अध्यास का नाश हो जाता है एवं अध्यास के नाश से उसके कार्य देहादि संघात् से आत्म बृद्धि (मैं भाव) छूट जाता है ।

हे हनुमान ! जैसे पुरुष कहता है मेरा कुत्ता, मेरा जूता, मेरा कोट, मेरा पेन्ट, मेरी साड़ी, मेरी चप्पल, मेरा चश्मा, मेरी घड़ी, यहां जितने भी पदार्थ मेरा, मेरे-मेरी रूप से दर्शाये हैं, वह सब मैं से भिन्न है । जैसे मेरा कृत्ता, मेरा जूता, मेरा मकान । अब यहां मैं कुत्ता, मैं जूता, मैं मकान यह तात्पर्य नहीं निकलता बल्कि मैं से मेरे पदार्थ भिन्न होना ही सिद्ध होता है । इसी प्रकार मेरा हाथ, मेरी आँखें मेरे कान, मेरे दांत, मेरा मुख, मेरी टांग आदि मुझसे निश्चित भिन्न है, जैसे कृत्ता, जूता, चप्पल, मकान, पेन्ट, कोट आदि मुझसे पृथक् है । अतः हे हनुमान ! निश्चित करो कि यह पंच भूत, शरीर, प्राण,पंच ज्ञानेन्द्रिय पंच कर्मेन्द्रिय, मन, बुद्धि एवं शब्द, स्पर्श, रूपादि विषय जगत् इन सबसे तू न्यारा है एवं सबका साक्षी है ऐसा निश्चय ही आत्म ज्ञान है एवं यही सोऽहम् धारण ही जीवकी सच्ची मुक्ति ।

साक्षी मुक्त है

हे वत्स हनुमान ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुच्र्छा तथा समाधि इन सभी अवस्थाओं को तुम प्रपंच मात्र जानो । इन अवस्थाओं को जानने वाला ही सर्वज्ञ है वह तुम हो । इस प्रकार जो अपने को इन सभी अवस्ताओं का साक्षी आत्मा रूप जानता है, तभी वह अवस्थाओं के अहंकार बन्धन से छूट कैवल्य मुक्ति को प्राप्त करता है । जैसा कि श्रुति वचन है –

जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तयादि प्रपंचयत्प्रकाशते ।
तद् ब्रह्माहमीति ज्ञात्वा सर्व बन्धैः प्रमुच्यते ।। कैवल्यौ १७

जाग्रत् स्वप्नः सुषुप्तं च गुणतो बुद्धि वृत्तयः ।
तासां विलक्षणो जीवः साक्षीत्वेन विनिश्चितम ।।

भागवत ११/१३/२७

जाग्रतादि अवस्थाओं में जीव की स्थिति

जीव	जाग्रत	स्वप्न	सुषुप्ति
स्थान	नेत्त	कंठ	हृदय
वाणी	बैखरी	मध्यामा	पश्यन्ति
गुण	रजोगुण	सत्त्वगुण	तमोगुण
शक्ति	क्रिया	ज्ञान	द्रव्य
भोग	स्थुल	सूक्ष्म	आनद अज्ञान
ॐ मात्रा	अ	उ	म
शरीर	स्थूल	सूक्ष्म	कारण
अभिमान	विश्व	तैजस	प्राज्ञ

प्र+ अज्ञ = प्राज्ञ अर्थात् विशेष रूप से अज्ञानी

पश्यन्ति वाणी – सूक्ष्म विचार के संस्कार रूप वाणी

मध्यमा वाणी – बोलने के पूर्व मन में संग्रहित विचार धारा

बैखरी वाणी – वाणी द्वारा स्पष्ट उच्चारण

द्रव्य शक्ति – जाग्रतादि अवस्थाओं के अनुकुल पदार्थों को उत्पन्न होने के योग्य कारण रूप

आनन्द भोग – निर्विषयक सुख का भोग.

हे हनुमान ! यह जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्च्छा तथा समाधि अवस्था का आपस में तो व्यतिरेक है किन्तु तुम सभी में अनुस्यूत हो । जैसे – जब जाग्रत अवस्था होगी तब स्वप्न तथा सुषुप्ति नहीं होती, जब स्वप्नावस्था होगी तब जाग्रत एवं सुषुप्ति अवस्था नहीं होती । जब सुषुप्ति अवस्था होती है तब जाग्रत व स्वप्न अवस्था नहीं होती । जब समाधि होगी तब जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति यह तीनों अवस्था नहीं होती किन्तु तुम इन सभी अवस्थाओं में एकरस अनुस्यूत हो । तुम इन अवस्थाओं के होने, न होने को जाननेवाले प्रकाशक साक्षी, आत्मा, नित्य, मुक्तानन्द हो । यह तीन अवस्थाओं का अभिमानी जीव ही बन्धन को प्राप्त होता है ।

हे हनुमान ! सुषुप्ति अवस्था में सुख और अज्ञान का साक्षी चेतन रूप सामान्य ज्ञान है; परन्तु इन्द्रिय तथा अन्तःकरण के लीन हो जाने से उस वक्त सुख और अज्ञान का विशेष ज्ञान नहीं होता है । जब मनुष्य जाग्रत अवस्था में आता है तबहि इन्द्रिय एवं अन्तःकरण की वृत्तियों के जाग्रत हो जाने से सुषुप्ति अवस्था में अनुभव किये सुख एवं अज्ञान का स्मरण कर कहता है कि मैं रात सुख से सोया मुझे कुछ भी पता न चला ।

अहं साक्षीति यो विद्यात् विविच्यैवं पुनः पुनः ।
स एव मुक्तः सो विद्वान् इति वेदान्त डिंडिम ।।

जो ऐसा निश्चय से जानता है कि मैं समस्त अवस्थाओं, क्रियाओं तथा वृत्तियों का साक्षी हूँ, वह विद्वान् मुक्त ही है, यही वेदान्त का डिंडिम उद्घोष है ।

उपनिषदें क्या कहती हैं ?

हे हनुमान ! समस्त उपनिषदों का तात्पर्य ब्रह्मात्म ज्ञान में है एवं वह ब्रह्मात्म ज्ञान, आत्म-ज्ञान के बिना अन्य किसी साधन से नहीं हो सकता है । वही ज्ञान ''सीता गीता'' इस ग्रंथ में दर्शाया गया है । इस ग्रंथ का सम्पूर्ण स्वाध्याय कर लेने के पश्चात् किसी वेदान्त शास्त्र या उपनिषद के स्वाध्याय की आवश्यकता नहीं रहती है । फिर भी जिज्ञासु की जानकारी के लिए कुछ मुख्य उपनिषदों का तात्पर्य यहाँ पर दर्शाया गया है ।

१) ईशावास्योपनिषद् : आत्म साक्षत्कार से ही समस्त शोक, मोह की निवृत्ति हो सकती है । ब्रह्म और आत्मा को एक देखने वाला ज्ञानी पुरुष सबको अपना आत्मा ही देखता है, उस स्थिति में उसके लिए मन में देहभाव ही नहीं रहता, तब शोक एवं मोह किस प्रकार हो सकते हैं ? अर्थात् कदापि नहीं रह सकते है ।

२) केनोपनिषद् : आंख, कान, मन, प्राण तथा वाणी के द्वारा जो कुछ देखा, सुना, सोचा, किया तथा बोला जाता है, वह ब्रह्म नहीं है । इन्द्र देवता को उमादेवी के द्वारा ब्रह्म विद्या प्राप्त होने पर ही वह अभिमान रहित हो मुक्ति को प्राप्त हुए । ब्रह्म विद्या के समान अन्य कोई विद्या नहीं है। अन्य विद्या नाशवान है एवं ब्रह्म विद्या अविनाशी होने से सर्वोत्तम है ।

'अध्यात्म विद्या विद्यानां' – गीता : १०/३२

३) कठोपनिषद् :– यमराज नचिकेता को उसके तृतीय वर के बदले में आत्म विद्या सम्बन्धी बात न पूछने का आग्रह करते हैं एवं उसके बदले इसलोक एवं स्वर्गादिक लोकों की भोग सामग्री बिना साधन के सहज ही देने को प्रस्तुत होते हैं । किन्तु बालक नचिकेता ने समस्त भोगों को अस्वीकार कर दिया एवं आत्म सम्बन्धी वर के तुल्य अन्य किसी भी भोग को स्थान नहीं दिया । इससे यह बात सिद्ध होती है कि आत्मसाक्षात्कार से सब भोग पदार्थ सिद्धि आदि गौण ही है । आत्म ज्ञान के आचार्य एवं जिज्ञासु की दुर्लभता बतलाई है ।

४) प्रश्नोपनिषद् :– सगुण ब्रह्मनिष्ठ भारद्वाज ने भी ब्रह्मात्म विद्या से ही कृतार्थता प्राप्त की । ब्रह्म साक्षात्कार होने पर कुछ भी ज्ञातव्य शेष नहीं रहता ।

५) मुण्डकोपनिषद् :– शौनक ऋषि ने प्रश्न किया कि किसके विज्ञान से सबका ज्ञान होता है ? उत्तर में यह ज्ञात हुआ कि दृश्यत्व ग्राह्यत्व आदि इन्द्रिय विषयता से शून्य निर्विशेष ब्रह्मरूप आत्मा के साक्षत्कार से ही सर्वज्ञता की प्राप्ति होती है एवं जीव के समस्त संचित् कर्म नष्ट हो जाते हैं तथा जीव संशय रहित अमृत को प्राप्त होता है ।

६) माण्डूक्योपनिषद् :– अद्वितीय आत्मा को ही एकमात्र ज्ञातव्य कहा गया है एवं यह आत्मा ही ब्रह्म रूप है ऐसा दर्शाया गया है । ''अयं आत्मा ब्रह्म''चार महावाक्यों में से यह एक महावाक्य है जो बिना साधन ''आत्मा ब्रह्म ही है'' यह प्रमाणित करता है । यह आत्मा किसी इन्द्रिय का विषय न होकर भी सब शरीरों में चैतन्य रूप से विद्यमान है ।

७) छान्दोग्य उपनिषद् :– प्रजापति द्वारा जगत् कल्याणार्थ घोषणा हुई कि जो आत्म तत्त्व को साक्षात अपरोक्ष रूप से जानता है वह सब लोकों और पदार्थों को प्राप्त कर लेता है ।

नारद सनत्कुमार के पास जाकर आत्म विद्या प्राप्त करते हैं । बिना आत्म विद्या, भूमा-विद्या से समस्त विद्या अल्प है । **'तरति शोकं**

आत्मवित्' अर्थात् आत्मा का 'मैं' रूप से साक्षात्कार करने वाला समस्त शोकालय रूप देहाभिमान से मुक्त हो जाता है ।

८) बृहदारण्यक उपनिषद् :– मैत्रैयी को याज्ञवलक्य कहते हैं कि समस्त की प्रीति आत्म सुख के लिए ही अन्य पदार्थ, स्थान एवं व्यक्ति में होजी है । अस्तुः आत्म-तत्त्व का ही सद्गुरुओं से श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना चाहिये । आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय है, आत्मा को जानने वाला सर्वज्ञान को प्राप्त हो जाता है ।

याज्ञवलक्य गार्गो को कह रहे हैं कि इस आत्मा को जाने बिना जो बहुत प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान करता है वह कृपण है एवं जो आत्मा को जानता है वही ब्राह्मण है ।

९) जाबालदर्शन उपनिषद् :– जो ब्रह्म विद्या द्वारा अपने को आत्म रूप जान समस्त कामनाओं से रहित कृत-कृत्य हो गया है, उस आत्मदर्शी के लिये कोई भी धर्मानुष्ठान अपने कल्याण प्राप्ति हेतु कर्तव्य रूप अब शेष नहीं रहे हैं, अर्थात् वह सर्वदा मुक्त ही है ।

१०) कैवल्योपनिषद् :– जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति तथा समाधि आदि अवस्था का जो अपने को साक्षी, प्रकाशक, द्रष्टा ब्रह्मात्मा रूप जानता है, वह सब बन्धनों से छूट मुक्ति को प्राप्त हो जाता है ।

११) तेजबिन्दु उपनिषद् :– ''मैं ब्रह्म हूँ'' इस निश्चय मात्र से जीव ज्ञानानंद को प्राप्त होकर समस्त पाप, भय, चिन्ता, शोक एवं दुःख से मुक्त हो जाता है ।

१२) श्वेताश्वतर उपनिषद् :– आत्म देव को 'अहं' रूपसे जानने के कारण देहाध्यास से हुए समस्त पापों का नाश हो जाने से जीव के जन्म-मरण चक्र की समाप्ति सर्वदा के लिये हो जाती है ।

१३) मैत्रेयी उपनिषद् :– अपने सहित सर्वत्र एक ब्रह्म का दर्शन करना वास्तविक ज्ञान है '**अभेद दर्शनं ज्ञानं**' ।

१४) शुक रहस्य उपनिषद् :– संसार में जितनी भी कला, विद्याएँ हैं, वे सभी पेट भरने हेतु एवं नाशवान् हैं । किन्तु ब्रह्मविद्या ब्रह्म की प्राप्ति

कराकर स्थित रहनेवाली अविनाशी विद्या है । जिसने इस ब्रह्म विद्या को सद्‌गुरु से प्राप्त कर लिया उसके लिए, जप, तप, पुजा, पाठ, तीर्त मन्दिरादि ब्राह्म साधन निरर्थक है ।

यदि आत्म-साक्षात्कार नहीं हुआ तो जीव की बहुत बड़ी हानी है । बिना आत्मज्ञान हुए जीव का अज्ञान, पराधीनता, दीनता, दुःख, शोक, मोह भय एवं कर्तव्यता से छुटकारा नहीं हो पाता है । इन्द्र विरोचन आख्यान में इन्द्र के अज्ञान एवं दीनता की निवृत्ति हेतु उसे ब्रह्म विद्या को प्राप्त करने के लिए प्रजापति सद्‌गुरु की शरण में ब्रह्मचर्य से रहकर सेवा परायण हो १०१ वर्ष व्यतीत करना पड़ा, तब जाकर उसे ब्रह्मविद्या प्राप्त हुई । इस प्रकार एक अखंड व्यापक आत्म अनुभूति द्वारा वह समस्त शोक, मोह, भय, चिन्ता से मुक्त हो सब लोकों एवं भोगों को अनायास ही प्राप्त हुआ- सा हो गया ।

इस प्रकार सभी उपनिषदों में प्रायः ब्रह्मविद्या द्वारा ही आत्म साक्षातकार का एवं उससे समस्त दुःखों का समूल नाश बतलाया गया है । इसी तात्पर्य की पूर्ति हेतु ''सीता गीता'' ग्रंथ की रचना की गई है । जो व्यक्ति इस भौतिक विज्ञान की चहल-पहल एवं कार्य व्यस्तथा में समस्त उपनिषदों का स्वाध्याय नहीं कर पाते हैं उनके लिये यह ग्रंथ बहुत ही महत्वपूर्ण एवं परम उपयोगी सिद्ध होगा । वे यदि इस ग्रंथ के स्वाध्याय के पश्चात 'उपनिषद', 'ब्रह्म सुत्र' तथा 'गीत'' इन तीनों प्रस्थान-त्रयी ग्रन्थों का किसी सद्‌गुरु द्वारा स्वाध्याय करेंगे तो इन्हें समझना उनके लिए अत्यन्त सरल एवं सुगम ही होगा । सभी उपनिषदों में ब्रह्म-विद्या का ही महत्व एवं वर्णन किया गया है । जिज्ञासुओं को यहाँ तो उपनिषदों का तात्पर्य साराशं में दर्शाया गया है । विशेष तो उपनिषदों के स्वाध्याय से ही जान सकेंगे ।

ब्रह्म विद्या प्राप्ति में आहार-शुद्धि पर विशेष ध्यान रखना होता है । अन्यथा पढी हुई विद्या विफल ही हो जाती है । आहार शुद्ध न होने के कारण उसी ब्रह्म विद्या का विरोचन, विपरीत अर्थ लगा अनर्थ कर बैठा,

जबकि इन्द्र शुद्वाहार एवं गुरुसेवा परायण हो मुक्ति प्राप्त कर सके । आहार का अर्थ केवल जिव्हा रस से ही नहीं अपितु शब्द, रूप, स्पर्श तथा गन्धादि इन पांचों विषयों की शुद्धि से है ।

शुद्ध आहार करने वालों की ही बुद्धि शुद्ध होती है । शुद्ध बुद्धि से ही अपने वास्तविक साक्षी, द्रष्टा, आत्म स्वरूप की स्मृति जागृत होती है एवं स्वरूप स्मरण से ही जीव समस्त कर्म बन्धनों से मुक्त हो परम गति को प्राप्त हो जाता है ।

ꕥ●ꕥ

षड् लिंग

'ब्रह्मात्म ऐक्य' का दृढ़ निश्चय कराने वाले षड् लिंग माने गये हैं, जिनके द्वारा समस्त वेदान्त वाक्यों के तात्पर्य सोऽहम् स्वरूप का निश्चय करना ही श्रवण हैं । षड्लिंग इस प्रकार है (१) उपक्रम उपसंहार (२) अभ्यास (३) अपूर्वता (४) फल (५) अर्थवाद (६) उपपत्ति

१) **उपक्रम उपसंहार :–** प्रकरण द्वारा प्रतिपाद्य अर्थ को प्रकरण के प्रारम्भ से वर्णन करने को उपक्रम कहते हैं । उपक्रम विषय का प्रतिपादन करते हुऐ विषय की समाप्ति को उपसंहार कहते हैं । इस प्रकार प्रकरण का प्रारम्भ उपक्रम और प्रकरण का अन्त उपसंहार समझना चाहिये ।

२) **अभ्यास :–** प्रकरण द्वारा प्रतिपादित अद्वय ब्रह्म वस्तु का प्रकरण में पुनः पुनः प्रतिपादन करना ही अभ्यास है जैसे 'तत्त्वमसि' महावाक्य को उद्दालक मुनी ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को नव बार दोहराया था । अर्थात् 'तु ही प्रत्यगात्मा ब्रह्म है' ऐसा बारम्बार कहने को अभ्यास कहते हैं ।

३) **अपूर्वता :–** प्रकरण से प्रतिपादित अद्वितीय आत्म वस्तु का अन्य प्रमाणों से प्रतिपादन होने की असंभावना ही अपूर्वता है । श्रुति के अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रमाण से ब्रह्म प्रतिपादन के योग्य नहीं है,

एवं अद्वितीय स्वयं प्रकाश ब्रह्म के ज्ञान में किसी अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं है । इस कथन के अनुसार ब्रह्म की यह अपूर्वता है ।

४) फल :– प्रकरण से प्रतिपादित आत्म ज्ञान या उसके रूप श्रवण, मननादि के करने से अपने अभिप्राय और श्रुति ने जिन सम्बन्धों के विषय में कहा है उन–उनके अभिप्राय का कथन फल कहलाता है । इस प्रकार साधन एवं प्रयोजन दोनों का जहाँ एक साथ कथन हो उसे फल कहा जाता है । जैसे ब्रह्मनिष्ठ गुरु के उपदेश से आत्म बोध होता है एवं केवल आत्म ज्ञान से ही जीव शोक समुद्र से पार हो जाता है । यहाँ साधन एवं प्रयोजन दोनों साथ है । ब्रह्मनिष्ठ सद्‌गुरु का उपदेश साधन है और आत्म बोध होना प्रयोजन है ।

५) अर्थवाद :– प्रकरण में प्रतिपादित अद्वितीय ब्रह्म की वहाँ–वहाँ स्तुति करना ही अर्थवाद है । जैसे एक ब्रह्म के ज्ञान से सबका ज्ञान हो जाता है एवम आत्मानुभूति से सब लोक, भोग की प्राप्ति हो जाती है यह अर्थवाद है ।

६) उपपत्ति :– प्रकरण से प्रतिपादित हुई आत्म वस्तु को दृष्टान्तों से प्रतिपादन करने को उपपति कहते हैं । जैसे मिट्टी के ढेले का ज्ञान हो जाने पर मिट्टी के सभी पात्र 'यह मिट्टी है' ऐसे जाने जाते हैं और घटादि नाम, रूप वाणी का विकार होने से मिथ्यात्व प्रकट होता है । इस प्रकार नाम रूपात्मक सर्व प्रपंच के असत्य होने का विवेचन और एक अद्वितीय ब्रह्म का प्रतिपादन उपपत्ति कहा जाता है ।

जिज्ञासुको उक्त प्रकार से उपक्रम उपसंहारादि षड्‌लिंगों के द्वारा सर्व वेदान्त वाक्यों के अभिप्राय रूप अद्वय ब्रह्म को समझना चाहिये ।

आत्म विद्या

–: नारद – सनत्कुमार संवाद :–

छान्दोग्य उप.

सालोक्य, सामीप्य, सायुज्य सारुप्यादि मुक्ति प्राप्त भक्तिमार्गाचार्य श्री नारद अत्यन्त दुःखो होकर जिज्ञासु भाव से श्री सनत्कुमार के पास गये और प्रार्थना की, कि हे प्रभो ! यह आपका दास नारद दुःखों के सागर में डुब रहा है । भगवन !मैंने सुना है कि, ''तरति शोकं आत्मवित'' आत्म ज्ञानी शोक के सागर से पार हो जाता है । अतः हे गुरुदेव ! मैं आपसे विनम्र प्रार्थना करता हूँ कि आप इस दास नारद को ब्रह्मविद्या का उपदेश कीजिये ताकि मैं कैवल्य मुक्ति प्राप्त कर सकुँ ।

सनत्कुमार ने कहा– कि हे नारद ! सर्वप्रथम आप यह बतलाये कि आप क्या – क्या जानते हैं ?

नारद ने कहा– हे भगवन ! मैं चारों वेद इतिहास, पुराण, व्याकरण, श्राद्ध, कल्प, गणित, निरुक्त, शिक्षा, छन्द, तर्क, नीति, विधि, शास्त्र, जानता हूँ । धनुर्विद्या, भूत विद्या, क्षत्रविद्या, नक्षत्रविद्या, शिल्पविद्या, ज्योतिष विद्याएँ मैं अच्छी प्रकार से जानता हूँ, ये सब मुझे सम्पूर्ण मुखस्थ हैं । परन्तु भगवन ! मैं केवल वेदों, शास्त्रों के शब्दार्थ को ही जानता हूँ, आत्मा का वास्तविक साक्षातकार मुझे नहीं है । मैं शोक, मोह मैं डूब रहा

हूँ, आप मुझे अपना शिष्य स्वीकार कर उपदेश प्रदान कीजिये । मैंने सुना है कि आत्मवेता शोक से रहित होता है, **'तरति शोकं आत्मवित्'** । किन्तु मैं शोक करता हूँ, इसलिए यह बात प्रमाणित है कि मैं ईश्वरोपासक तो हूँ किन्तु आत्मवित् नहीं हूँ और मैने सुना भी है कि आत्म ज्ञान के बिना जीव को परम शान्ति किसी भी साधन से प्राप्त नहीं हो सकती है ।

सनत्कुमार ने नारद की मनोदशा एवं साधनों का विचार कर सोचा कि, नारद यद्यपि सम्पूर्ण शास्त्रों के ज्ञाता है, तथापि जो शास्त्रों में अनेक प्रकार की बातें कही गई और उनमें परस्पर जो विरोधाभास दिखाई पड़ता है उसके कारण इनकी बुद्धि संशयजाल में फंसी हुई है । अतः बुद्धि जब तक संशय विपर्यय से रहित नहीं होगी, तब तक इन्हे आत्म साक्षतकार कभी नहीं हो सकेगा । अस्तु इन्हें आत्म ज्ञान का रहस्य समझाना चाहिये, ताकि ये शोक-मोह के सागर से पार हो जावें । ऐसा विचारकर सनत्कुमार ने नारद को नाम, रूप की उपासना से श्रेष्ठ प्राणब्रह्म की उपसना बतलाई । तब नारद प्राण को ही ब्रह्म समझ चुप हो बैठै । तब सनत्कुमार ने कहा नारद ! 'तुम अतिवाद बनो' नारद ने पूछा- अतिवादी कैसे बनूँ ? आप ही मुझे अतिवादी बनाइये । सनत्कुमार ने कहा - सत्य भाषण आदि साधनों से सम्पन्न होने पर मनुष्य सत परमार्थ वस्तु के ज्ञान से 'अतिवादी' होता है।

नारद ने पूछा- सत वस्तु का विज्ञान कैसे प्राप्त होता है ।
सनत्कुमार ने कहा- मनन से विज्ञान प्राप्त होता है ।
नारद ने पूछा- मनन किसे कहते हैं ।
सनत्कुमार ने कहा- ब्रह्मनिष्ठ गुरु के द्वारा सुने वेदों के महावाक्यों का तात्पर्य से निश्चय करने हेतु, अभेद की साधक तथा भेद की बाधक युक्तियों द्वारा अद्वितीय ब्रह्म के चिन्तन करने को मनन कहते हैं ।
नारद ने पूछा- मनन की सिद्धि कैसे होती है ?
सनत्कुमार ने कहा- मनन की सिद्धि तत्त्व में श्रद्धा से होती है ।
नारद ने पूछा- श्रद्धा प्राप्ति का क्या उपाय है ?

सनत्कुमार ने कहा– श्रद्धा 'निष्ठा' से प्राप्त होती है ।
नारद ने पूछा– निष्ठा किसे कहते हैं ?
सनत्कुमार ने कहा– ब्रह्मचर्य पालन तथा सद्गुरु सेवा उपासना एवं उन में कल्याण का विश्वास करने का नाम ही निष्ठा है ।
नारद– निष्ठा कैसे प्राप्त होती है ?
सनत्कुमार– 'कृति' से निष्ठा प्राप्त होती है ।
नारद– कृति किसे कहते हैं ?
सनत्कुमार– शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा, उपरामता, समाधानता आदि साधन चतुष्टय का नाम ही कृति है ।
नारद– कृति कैसे सिद्ध होती है ?
सनत्कुमार– कृति के सिद्ध करने का उपाय अपने अखण्डानन्द के अनुभव की तीव्र इच्छा ही है ।
नारद– अखण्डानन्द किसे कहते हैं ?
सनत्कुमार– जो कभी दुःख में न बदले जो सर्वकाल में बिना इन्द्रिय, वृत्ति तथा विषय के सहज प्राप्त हो उसे अखण्डानन्द कहते हैं । वह नित्य, निरतिशय, परिपूर्ण एवं व्यापक है ।

'यो वै भूमा तत सुखम, ना अल्पे सुखमस्ति'

आनन्द तो अखंड में ही है । अल्प तो दु:ख रूप ही है । अतः है नारद । तुम अल्प नाशवान की उपासना छोड़, जो भूमा ब्रह्म है उसकी उपासना '**अहं**' रूप से करो तब तुम शोक–मोह के सागर से मुक्त हो पाओगे । वह सबका मूल कारण भूमा तुम्हारा आत्मा अर्थात् तुम स्वयं ही हो ''**तत्त्वमसि**'' । तुम अपने को नश्वर शरीर मानकर क्यों भ्रमित हो रहे हो ? तुम अपने को तीन गुण, तीन शरीर, तीन अवस्था, पंचकोष से पृथक् इनका साक्षी, नित्य, शुद्ध बुद्ध, मुक्तानन्द, अद्वितीय ब्रह्मात्मा ही जानों ।

हे नारद ! वह भूमा तुम्हारा आत्मा ही ब्रह्म है । वही परमात्मा है । तुम अपना ध्यान लगाकर उसका अनुभव तो करो कि मैं ही नीचे हूँ, मैं ही ऊपर हूँ, मैं ही दक्षिण में हूँ, मैं ही उत्तर में हूँ, मैं ही पूर्व में हूँ, मैं ही

पश्चिम में हूँ, मैं ही दाँये हूँ, मैं ही बाँय हूँ । सब रूपों में में ही हूँ, सब देश एवं कालों के रूप में में ही विद्यामान हूँ । सबका द्रष्टा, साक्षी कुटस्थ ब्रह्म मैं ही हूँ । हे नारद ! जो अन्य देवता की भेदोपासना करते हैं वे पराधीन हो नाना कष्ट उठा नाशवान लोकों में जन्मते एवं मरते रहते हैं । परन्तु जो अपने अखण्ड, व्यापक, एकरस आत्मका "**मैं**" रूप से अनुभव कर लेते हैं वे कृतकृत्य हो जाते हैं ।

नारद–हे भगवन ! आपके द्वारा इस ब्रह्म विद्या (भूमा विद्या) का उपदेश सुनकर मैं अपने को देहाभिमान एवं शोक–मोह से रहित हुआ शिवोऽहम 'सोऽहम्' स्वरूप आत्म अनुभव करता हूँ ।

आत्म साक्षात्कार

आत्म साक्षात्कार के सम्बन्ध में प्रायः जिज्ञासु भ्रान्त धारणा बनाये रखते हैं । जैसे जगत् में एक दृश्य पदार्थ होता है, और उसे जानने, देखने वाला चेतन द्रष्टा उससे पृथक् होता है, उसी प्रकार आत्मा को दृश्यवत नहीं देखा जा सकेगा । आत्मा तो अप्रमेय एवं सर्व द्रष्टा है । वह जगत् की तरह दृश्य प्रमेय रूप नहीं है । जैसे इन्द्रिय द्वारा विषय ग्रहण किये जाते हैं, इस तरह आत्मा इन्द्रिय द्वारा अग्राह्य है ।

जो प्रमाण का विषय हो उसे प्रमेय कहते हैं एवं जो किसी प्रमाण का विषय न बन सके उसे अप्रमेय कहते हैं । यह समस्त भीतरी एवं बाह्य जगत् मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार तथा श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिव्हा तथा घ्राणादि इन्द्रिय प्रमाण का विषय होने से प्रमेय कहलता है, किन्तु आत्मा इन किसी भी इन्द्रिय प्रमाण का विषय नहीं है इसलिए आत्मा को अप्रमेय कहते हैं **''अनाशिनो अप्रमेयस्य''** गीता २/१८

आत्मा अद्वितीय वस्तु है । वह चेतन एवं द्रष्टा है । उससे पृथक् कोई अन्य चेतन एवं द्रष्टा नहीं है । यदि दो आत्मा होती तो एक देखने का साधन करती एवं दूसरी साधना अभ्यास की पूर्णता पर दृष्टिगोचर हो जाती । किन्तु ऐसा तो है नहीं । आत्मा ही एकमात्र द्रष्टा है शेष सभी अनात्मा एवं दृश्य है ।

अब जिज्ञासु के मन में यह सन्देह हो सकता है कि जब आत्म-वस्तु इन्द्रिय या अन्य प्रमाण का विषय ही नहीं तब उसे कैसे जाना जा सकेगा ? उसका साक्षात्कार कैसे हो सकेगा ?

इस विषय में बृहदारण्यक उपनिषद में राजा जनक तथा गुरु याज्ञवल्कय के बीच संवाद मिलता है । राजा जनक याज्ञवल्कयजी से आत्म-साक्षातकार के सम्बन्ध में प्रश्न करते हैं कि महाराज ! जगत् में मनुष्य किस ज्योति में अपना कार्य करते हैं ? याज्ञवल्कयजी ने कहा- हे राजन ! मनुष्य सूर्य की ज्योति में ही अपना-अपना व्यवहार-व्यापार करते हैं एवं सूर्यास्त से पूर्व ही पुनः अपने घरों में लौट आते हैं ।

राजा जनक ने पूछा- महाराज ! यदि मनुष्य किसी कारण सूर्यास्त से पूर्व घर न लौट सके तो, फिर मनुष्य किसके प्रकाश में अपना कार्य करते हैं ?

याज्ञवल्कयजी ने कहा- राजन ! हे राजन ! सूर्य के अभाव में मनुष्य चन्द्र प्रकाश में अपना कार्य करते हैं ।

राजा जनक ने पूछा- महाराज ! यदि अमावस्या के कारण चन्द्रमा के प्रकाश का भी अभाव हो तब मनुष्य किस प्रकाश में अपना कार्य करते हैं ? याज्ञवल्कयजी ने कहा- हे राजन ! तब मनुष्य दीपक के प्रकाश में ही अपना कार्य करते हैं ।

राजा ने प्रश्न किया- हे प्रभो ! जब सूर्य, चन्द्र तथा दीपक का भी प्रकाश प्राप्त न हो सके, तब मनुष्य किस प्रकाश में अपना कार्य करते हैं ? याज्ञवल्कयजी ने कहा- हे राजन ! तब मनुष्य आस- पास के लोगों की वाणी (शब्द) श्रवण कर अथवा कुत्ते के भोंकने द्वारा ही उस और चलकर अपने ग्राम पहुँच जाता है ।

राजा जनक ने पूछा- हे स्वामी ! यदि मनुष्य को सूर्य, चन्द्र, दीपक, शब्दादि प्रकाश भी उपलब्ध न हो तो फिर उसको देखने करने के लिए कौनसी ज्योति सहयोगी होगी ? तब याज्ञवल्कयजी ने कहा- हे

राजन ! जिस प्रकाश में अन्धा एवं बहरा व्यक्ति अपना दैनिक कार्य कर जीवित रहते हैं एवं संसारी लोग स्वप्न प्रपंच देखते हैं ?

राजा जनक ने कहा– हे महाराजा ! मैं नहीं जानता कि वह प्रकाश किसका होता है ? तब याज्ञवल्कजी ने कहा– हे राजन– वह प्रकाश ही आत्म–ज्योति है जिसके प्रकाश में सूर्य, चन्द्र, दीपक, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, भूख–प्यास, सुख–दुःखदि द्वन्द्व जाने जाते हैं और वह तू स्वयं ही ज्योतियों का ज्योति अन्तर्ज्योति है । तेरे प्रकाश में ही यह सब दृश्य वस्तु प्रकाशित होती रहती है । अस्तुः है राजन ! वह स्वयं प्रकाश आत्म–ज्योति मैं हूँ ऐसा दृढ़ निश्चय ही आत्म साक्षात्कार है । इससे पृथक् अन्य सभी विचार दृश्य एवं कल्पना मात्र है ।

ज्योतिषामपि तज्जयोतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।। १३/१७

वह परब्रह्म ज्वोतियों क भी ज्वोती है एवं माया से अत्यन्त परे कहा जाता है । वह परमात्मा बोध स्वरूप, जानने योग्य एवं तत्त्वज्ञान से प्राप्त करने योग्य है, और सबके हृदय में विशेष ज्ञान रूप से स्थित है ।

आत्मा द्दष्टि का विषय नहीं स्वयह द्रष्टा है, वह बुद्धि का विषय नहीं स्वयं बुद्धि का विज्ञाता है ।

'विज्ञातारमरेकेन विजानीयात'

अर्थात् जो सबका द्रष्टा एवं ज्ञाता है, उसे आप दृश्य एवं ज्ञेय नहीं बना सकते हैं । वह परमात्मा मैं स्वयं आत्मा हूँ ऐसी निष्ठा ही आत्म–साक्षात्कार है ।

श्रुति, स्मृति, पुराण एवं इतिहासादि सद ग्रन्थों में परमात्मा को इन्द्रियातीत, अवाङमानसगोचर, अप्रमेय आत्म स्वरूप बतलाया है । यदि ऐसा ही परमात्मा है कि जो किसी इन्द्रिय का विषय भी नहीं है एवं वह है भी । तो याद रखें ! फिर वह परमात्मा आप स्वयं ही हो सकते हैं, अन्य नहीं । यदि उसे अन्य मानोगे तो फिर उसके होने में अन्य प्रमाण

की भी आवश्यकता पैड़ेगी । जब कि वह अप्रमेय है । और परमात्मा किसी प्रमाण का विषय है ही नहीं । तब तो ऐसे आप स्वयं ही हो सकते हैं, जिसके अपने होने में आज तक किसी को ऐसा सन्देह नहीं हुआ कि मैं हूँ या नहीं ? और अपने होने के लिये न किसी अन्य प्रमाण की ही किसी को जरूरत पड़ती है । क्या अपनी सत्ता के ज्ञान हेतु सूर्य, चन्द्र, दीपक के प्रकाश का होना जरूरी है या क्या ? अन्य कोई मुझे जब पुकारेगा तब क्या मैं हूँ ऐसा मैं अपने लिये निश्चय कर सकूँगा ? अस्तुः ! अपना आपा ही आत्मा है । यह अप्रमेय है । यही अन्तः ज्योति है, यही आत्म साक्षात्कार है और यह तुम ही हो ।

मैं मन का साक्षी

भगवान श्रीराम ने कहा – हे हनुमान ! एक समय गुरुकुल में जब मैं विद्या अध्ययन कर रहा था तब वेद अध्यापन के समय श्री गुरुदेव वशिष्ठजी महाराज से हम सब विद्यार्थियों ने सुना–

ज्ञात्वा देवं सर्वपाशपहानि १/११ श्वेता. उप.

ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशेः

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यातेऽयनाय

३/८ श्वेता. उप.

अर्थातः–'आत्मदेव के ज्ञान से सर्व बन्धन कट जाते है' क्लेशों के नष्ट हो जाने पर जन्म–मरण नहीं होता । इस वाक्य को सुन मेरे साथी के मन में यह जिज्ञासा हुई कि उस देवता को मैं किस प्रकार जान सकता हूँ, जिसके ज्ञान से समस्त बन्धन कट जाते हैं एवं जीव मुक्त हो जाता है, उस देव को जाने बिना मुक्ति का अन्यकोई मार्ग नहीं । इस विचार में डूबा हुआ वह पुनः क्षमा मूर्ति दयालु श्री सदगुरु के पास में गया एवं अपने मन के संशय को उसने इस प्रकार प्रकट किया– हे भगवन ! वह देवता कौन है ? जिसके जानने से जीव के समस्त बन्धन कटकर वह आवागमन से मुक्त हो जाता है । तब उस जिज्ञासु को सदगुरु ने कहा– **'यो मनः साक्षीः'** । हे वत्स ! जो तेरे मन का साक्षी है, वही परम देवता है ।

इतना स्पष्ट बताने पर भी जब जिज्ञासु को श्री सदगुरु देव के यथार्थ वचन का साक्षात् अपरोक्ष रूपसे ज्ञान नहीं हुआ तब वह वहाँ से उठ विचार करते चला कि गुरुदेव ने मेरे मन के साक्षी जिस देव का मुझे उपदेश किया है, उसे मैंने तो नहीं जानता कि वह मेरे मन का साक्षी कौन देव हो सकता है ? क्या भगवान, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, गणेश इत्यादि देव मेरे मन के साक्षी है या कोई अन्य देवता है ? इस प्रकार बारम्बार विचारता हुआ अपने कुटिया की और जा रहा था, किन्तु जब वह किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा तब उसने हम सब विद्यार्थियों के पास जाकर अपने मनके साक्षी देव (परमात्मा) का स्वरूप जानना चाहा । हे हनुमान ! वह जिज्ञासु सर्व प्रथम मेरी ही कुटिया में आ पहुँचा और कहा– हे भाई राम ! तुम कक्षा में सब विद्यार्थियों में सर्व श्रेष्ठ बुद्धिमान हो, तुम्ही मेरी उलझन को दूर करो; क्योंकि श्री गुरुदेव के गूढ तात्पर्य को तुम अतिशीर्घ भली प्रकार कक्षा में समझ जाते हो । आप श्री गुरुदेव द्वारा पूछने पर तत्काल यथावत बता भी देते हो । आपकी विद्वता से कौन परिचित नहीं है । अतः हे भाई ! कल कक्षा में जब श्री गुरुदेव वेद अध्यापन करा रहे ते तब हम सभी ने यह पाठ का उचारण किया था कि '**ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशेः**' जिसका अर्थ हमें बताया गया था कि आत्म देव को जानने वाला समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । यह सुनकर कक्षा के किसी विद्यार्थी ने तो श्री गुरुदेव से इस पर कुछ प्रश्न नहीं किया, किन्तु मेरे मित्रने गुरुदेव से ही पूछा कि हे प्रभो ! को देवः वह कौन देव है ? जिसके जानने से सब पाप नष्ट हो जाते हैं एवं जीव बन्धनों से छूट मुक्त हो जाता है । तब आचार्य श्री ने उससे कहा हे वत्स ! '**यो मनः साक्षी**' जो मन का साक्षी है । बस इतना कह आचार्यश्री तो अपने कक्ष में चले गये एवं हम सब विद्यार्थी उठ अपने-अपने कुटिया में आ गये, किन्तु मुझे उस देव का नाम जाने बिना शान्ति नहीं मिल रही है । जिसके जानलेने से जीव समस्त बन्धनों से छूट कैवल्य मुक्ति को प्राप्त करलेता है । अतः भ्राता श्री ! आप मुझे बतलायें जो मन का साक्षी है वह परमात्मा है उसका क्या तात्पर्य है ?

हे हनुमान ! मेरे उस साथी का संशय सुनकर मुझे बहुत हंसी आई और मैंने उससे कहा भाई ! तुझे भी तेरे होने के लिये अन्य के प्रमाण की जरूरत पड़ती है ? अरे पगले ! तेरे मन का साक्षी तू नहीं तो क्या कोई और हो सकेगा ? तेरे मन का तो तू ही साक्षी है । जिसका पता करने तू मेरे पास यहाॅ कुटिया में आया है, वह तुझसे भिन्न दूर नहीं है '**तत्त्वमसि**' किन्तु हे हनुमान ! मेरे द्वारा यथार्थ वचन के श्रवण से भी उसे अपने मन के साक्षी देव का कि वह ''मैं स्वयं ही हूँ'' ऐसा अपोराक्ष ज्ञान नहीं हुआ, तब वह इसी विचार में उलझा हुआ किसी तीसरे विद्यार्थीके पास जा यही बात पुनः पूछने लगा कि हे भाई ! मेरे मन का साक्षी कौन देव है ? यह प्रश्न सुन उसने भी वही यथार्थ वचन कहा जो पूर्व मैंने उसे कहा था, कि तेरे मन का तो तू स्वयं ही साक्षी है । इतने पर भी उसे सन्तोष नहीं हुआ तब वह अन्य साथीयों से यही प्रश्न करने लगा । जब सब के द्वारा उसे एक ही उत्तर मिलता गया कि तेरे मन का तो तू स्वयं ही साक्षी है, कोई अन्य देवता तेरे मन का साक्षी नहीं है । तब उसने सोचा कि जब यही बात सब एकमत हो कह रहे हैं तब मैं ही क्यों न इस बात की परीक्षा करूँ कि मेरे मन का साक्षी सचमुच क्या मैं स्वयं ही वह देव हूँ, या कोई अन्य देव है ?

इसी विचार को लेकर मैं अपने घर के बाहर चोपाल पर बैठ ध्यानस्त हो विचारने लगा । कुछ समय पश्चात् मेरा मन इस विचार से हट खेत में चला गया एवं देखने लगा कि मेरे खेत में किसी की भैंस घुस कर पौधे, फसल नष्ट कर रही है । यह देख मैं चौपाल पर ध्यानस्थ बैठा अरे भाग-भाग ऐं ऐं ! करने लगा । उस समय मेरा मित्र राम निकल रहा था तो उसने पूछा कि भाई, तू यह ऐं ! ऐं ! का जप क्यों कर रहा है । तब आंख बंद अवस्था में ही उसने कहा अरे ! क्या बताऊँ , देखो तो सही यह पड़ोसी की भैंस मेरे खेत में घुस गई है, पड़ोस का मामला है, मैंने कई बार कहा कि भाई ! भैंस को बांध रखा करो किन्तु सुनते ही नहीं । उसकी यह बात सुन हे हनुमान ! जब मैंने उसे हिला दिया तो जैसे ही

उसकी आंख खुली उसने देखा कि न वहां प्रत्यक्ष खेत है न भैंस । जिज्ञासु मन में शरमा गया एवं बुद्धि से विचार करने लगा कि मैं तो मन के साक्षी का पता लगाने बैठा था और यह मेरा मन खेत पर चला गया भैंस भगाने । अच्छा अब मेरा मन आ गया है । अब मैं ठीक से देखता हूँ कि मेरे मन का कौन साक्षी देव है ?

इस प्रकार उसने विचार करते–करते यह प्रत्यक्ष जान लिया कि मन के खेत में जाने एवं लौट आने के विषय में तो मैं ही साक्षी निकला एवं सद्‌गुरु ने भी यही कहा था की जो तेरे मन का ज्ञाता, साक्षी, द्रष्टा है वही ब्रह्म है । जिज्ञासु विचारने लगा कि मैं ही मन की चंचल, स्थिर, काम, क्रोध, सुख–दुःखादि वृत्तियों को जानता हूँ । हे हनुमान ! इस प्रकार जब उसे दृढ़ निश्चय हुआ कि मेरे अलावा अन्य कोई साक्षी देव नहीं है तब वह पुनः श्री गुरुदेव के पास जा कहने लगा कि हे गुरुदेव । ‘‘**मनो मे दृश्यते मया**’’ मन के आने – जाने को तो मैं जानता हूँ । तब सद्‌गुरु ने कहा– जब तू यह जान गया है कि मन का साक्षी ‘‘मैं स्वयं हूँ’’

‘तर्हि देवस्त्वमेवासि, एको देवः इति श्रुतेः ।’

तब तू ही तो वह परमात्मा है क्योंकि श्रुतियों में एक ही परमात्मा बतलाया है अतः हे शिष्य ! सच्चिदान्द साक्षी देव मैं स्वयं ही हूँ ऐसा तू निश्चय कर ।

‘‘एको देवः सर्व भूतेषू गूढः’

समस्त प्राणियों के हृदय में एक ही देव विद्यामान है । यहां एक ब्रह्म के अलवा अन्य कुछ भी नहीं है ; श्रुति में भी यही कहा है ‘**एको देवः इति श्रुतेः , एकमेवाऽद्वितीय ब्रह्म, नेहनानास्ति किंचत, सर्वधी साक्षी भूतम**’ ।

इसलिये हे हनुमान ! तुम भी मन, बुद्धि का साक्षी परमात्मा के प्रति यह निश्चय करो कि ‘‘वह परमात्मा मैं ही हूँ’’ । सोऽहम्, शिवोऽहम्, अहं ब्रह्मास्मि आदि स्वरूप निश्चय करो । ब्रह्मात्मा में कभी भेद बुद्धि

मत करो कि वह देव अन्य है और मैं उसका दास अन्य हूँ । हे हनुमान ! एक अखण्ड व्यापक सत्ता में भेद करना सबसे बड़ा पाप श्रुतियों में बतलाया है । भेद बुद्धि के कर्ता को सदा जन्म-मरण रूप भय की ही प्राप्ति होती रहती है । ''द्वितीया द्वै भयं भवति'' इसलिए द्वैत बुद्धि का परित्याग करके शिवोऽहम्, सोऽहम् रूप अभेद निश्चय वृत्ति को ही धारण कर कि ''वह मैं हूँ,'' 'सोहमस्मि इति वृति अखण्डा' इस अद्वैत वृत्ति वाले की ही उत्तम गति, अर्थात् ब्रह्म गति होती है; क्योंकि कहा भी है ''जैसी मति तैसी गति'' ।

आत्म अनुभव सुख सुप्रकाशा, तव भव मूल भेद भ्रम नासा ।।

रामायण

को देवः यो मनः साक्षी, मनो में दृश्यते मया ।
तहि देवस्त्वमेवासि, एको देवः इति श्रृतेः ।।

सत्संग क्यों एवं कब तक

गंगा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुस्तथा ।
पापं तापं च दैन्यं च हरेत साधुसमागमः ।।

गंगा स्नान से जीव के पापों का नाश होता है, चन्द्रमा उसके शारीरिक ताप को नष्ट कर शीतलता प्रदान करता है, तथा कल्पवृक्ष उसकी भौतिक इच्छओं की पूर्ति कर दीनता को निवृत्त कर देता है । परन्तु सतगुरु की शरण से जीव के पाप, ताप और दीनता तीनों तो निवृत हो जाते हैं साथ ही उसे अखण्ड आनन्द की प्राप्ति भी हो जाती है । इस प्रकार सद्गुरु शरण गंगा, चन्द्रमा तथा कल्पवृक्ष से भी परम श्रेयस्कर है । इसलिए मुमुक्षु अथवा ज्ञानी पुरुष को जीवन पर्यन्त ज्ञान होने के पूर्व अथवा पश्चात् भी सतसंग करते रहना चाहिये ।

यद्यपि सद्गुरु शरणापन्न होने पर महावाक्यों के तात्पर्य का निश्चय करने से आत्मानुभूति तो अवश्य ही हो जाती है, किन्तु शरीर रहते पर्यन्त प्रारब्धानुसार व्यवहार प्रवृत्ति होने से मन की चंचलता होती रहती है और चंचलता से मन आत्मा से विमुख हो जाने के कारण महान कष्ट को प्राप्त होता है । ऐसी प्रवृत्ति अवस्था में देह पर्यन्त आत्म-विचार, सत्संग न करे तो देहाभिमान के संयोग से बुद्धि में काम, क्रोधादि विकार उत्पन्न हो

सकते हैं जो दुःख को ही देते हैं । अतः काम, क्रोधादि विकारों से मुक्त रहते के लिये वेदान्त-चिन्तन सर्वदा करते रहना चाहिये । सत्संग से मानदिक अशान्ति तथा देह अभिमानों की निवृत्ति हो जाती है । अतः सज्जन पुरुषों को कभी भी खाली नहीं बअठना चाहिये । अर्थात् आत्म चिन्तम परायण ही रहता चाहीये ।

जैसे किसी शांत पुरुष को खाली बैठा देख कोई निंदक, बकवादी, दुष्ट पुरुष आकर इधर-उधर की बाते सुनाकर उसके शान्त मन सरोवर में निंदा रूपी फंकड़ी डाल अनेकों विचार तरंगों को उत्पन्न कर आशान्त कर देता है । यदि उस दुर्गुणी व्यक्ति को वह सज्जन पुरुष आदर न दे तो वह अपना अपमान जानकर पुनः उस सज्जन पुरुष के पास आने का साहस नहीं करेगा । इसी प्रकार यदि वेदान्त-चिन्तन से रहित किसी वेदान्ती साधक के पास कोई भेदवादी आवे एवं वह वेदान्ती उसका सत्कार कर अपने पास बैठावे तो वह अपनी भेद बुद्धि के तर्कों को उसके मन में धीरे-धीरे बैठा कर उसे सोऽहम, शिवोऽहम, वृत्ति से च्यूत करा देगा, जिसके फल स्वरूप भेद बुद्धि दृढ़ हो वह वेदान्ती भी काम, क्रोध, राग द्वेषादि द्वन्द्व में पड़ जावेगा । अस्तुः जागने से निद्रा पर्यन्त और ज्ञान हो जाने से देह पर्यन्त श्रद्धा भक्ति सहित वेदान्त का चिन्तन करते हुए ही अपना जीवन-यापन करना चाहिये ।

जिस पुरुष को दृढ़ आत्म बोध हो चुका है उसके लिये पारमार्थिक दृष्टि से यद्यापि वेदान्त, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि साधनों की किचिंत् भी कर्तव्यता नहीं है,

तस्य कार्य न विद्यते' गीता : ३/१६

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृतस्य योगिनः ।
नैवास्ति किचिंत् कर्तव्यमस्ति चेत् न स तत्त्ववित ।।

जाबाल उप, १/२३

अर्थात्- मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ, इस प्रकार निष्ठा प्राप्त हो जाने के पश्चात् वह शास्त्रों के शासन से मुक्त हो जाता है । तब उसके करने के

लिये कुछ कर्तव्य शेष नहीं रह जाता है । यदि कर्तव्य मानता है तो उसे अज्ञानी ही जानना चाहिये । किन्तु जीवन मुक्ति के आनन्द हेतु उसे भी सत्संग करते रहना चाहिये क्योंकि सत्स्ंग न करने से बुद्धि विपर्ययता को प्राप्त हो दुःख को ही उत्पन्न करती है ।

अस्तुः मरण पर्यन्त वेदान्त शास्त्र, उसके उपदेशक सद्गुरु, माता-पिता और ईश्वर । इन तीनों की वन्दना करते रहना चाहिये । जब तक अपने देह, परिवार का होंश है तब तक शास्त्र, गुरु एवं माता-पिता, ईश्वर का तिरस्कार करना पाप है । जब निर्विकल्पता सिद्ध हो जावे एवम ैपने देह का भी भान न रहे तब सांसारिक मर्यादा का उलंघन होने पर भी कोई दोष नहीं माना जाता है, किन्तु अपने देह भोग का विवेक रहते हुए अपने गुरुदेव, माता-पिता शास्त्र का कभी अपमान नहीं करना चाहिये ।

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।

गीता : १८/६२

हे प्रियात्मन हनुमान ! तुम सब प्रकार से उस बिम्ब स्वरूप अन्तर्यामि परमात्मा को अपना आत्म स्वरूप जानो तथा उस आनन्द सिन्धु परमात्मा में ही 'सोऽहम वृत्ति करो तब ही तुम परम शान्ति को प्राप्त कर सकोगे । अब तुम दासोऽहम्, कर्ताऽहम्, 'जीवोऽहम्' भाव की उपासना से मुक्त होकर 'सोऽहम्' साक्षी भाव का चिन्तन करो तभी तुम अक्षय कैवल्य, परमधाम, परम निर्वाण पद को प्राप्त कर सकोगे ।

सोऽहमस्मि इति वृत्ति अखंड ।,
दीप शिखा सोई परम प्रचंडा ।

आतम अनुभव सुख सुप्रकासा,
तव भव मूल भेद भ्रम नासा ।।

आत्मा ही परमानन्द स्वरूप है उसे निज स्वरूप जानकर जन्म-मरण के मूल भेदज्ञान (अज्ञान) का नाश कर सकेगा ।

निर्गुण रूप सुलभ अति सगुण जान नहिं कोइ ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ।।

हे हनुमान ! सगुण साकार नाम रूप विकारी माया अंश में एकरसता नहीं है, बल्कि नाना भेद वाली है । जिसको समझने में ऋषि, मुनियों के भी मन में भ्रम पैदा हो गया तब और जीवों का तो कहना ही क्या ? इसलिये मेरा मत तो यही है कि सगुण देहोपासना करने की अपेक्षा सोऽहम् धारण अति पावन एवं मोक्षदायी है । सगुण नाम रूप, में नारद, पार्वती, ब्रह्मा, काकभुशुण्डी, गरुड़ आदि सभी भ्रम जाल में फंस कर आरुढ पतित हुए हैं, यह बात पुराण प्रमाण जान मन को वहाँ से लौटा आत्मा में ही जोड़ लो ।

अध्यात्म रामायण उत्तरकाण्ड प्रथम सर्ग

श्री पार्वती ने अपने स्वमी श्री महादेव जी से पूछा कि महापराक्रमी श्री रामचन्द्र जी ने रावणादि शत्रुओं को मारकर लंकासे सीताजी सहित अयोध्या पुरी में आकर राज्याभिषिक्त होन के बाद कौनसा मुख्य कार्य किया ?

श्रीमहादेवजी ने कहा – हे पार्वती ! लंका से सीताजी सहित अयोध्यापुरी को लौटकर राजपद पर विराजमान हुए । कुछ समय के बाद एक दिन अपने सेनापति एवं मन्त्रियों से यह पुछा कि मेरे सीता माता, भाइयों और कैकयी के विषय में पुरवासी लोग क्या कहते हैं ? मैं तुम्हें अपनी शपथ कराता हूँ, तुम भय न करके सच-सच कहो । ४७-४८ ।।

भगवान के इस प्रकार पूछने पर एक विजय नामक दूत ने कहा – हे देव ! सभी लोग कहते हैं कि आत्मज्ञानी महाराज ने जो भी कार्य किये हैं वे सभी बड़े दुष्कर हैं । ४९ । किन्तु उन्होंने बिना किसी प्रकार सहन्देह किये सीता को अपने साथ लेकर घर में रख लिया यह ठिक काम नहीं किया । ।५० ।। भला जिस सीता को दूरात्मा रावण ने हरण कर लंका में ले जाकर अपने महल, अशोक वाटिका में कितने लम्बे समय तक रखा

था न जाने सीता के साथ उस राक्षस रावण ने क्या क्या दुष्कर्म न कियाहोगा । फिर भला ऐसे भ्रष्ट पत्नी के साथ भोग भोगते राम को क्या सुख मिलता है ।५१ ।।

अब हम नगर वासियों को भी अपनी स्त्रीयों के दुश्चरित्र को सहन करना पड़ेगा । अब हम उनके दुष्चरीत्र को देख उन्हें घर से नहीं निकाल सकेंगे न किसी प्रकार उन्हें दण्ड से सकेंगे । क्योंकि जैसे राजा होता है प्रजा भी निःसन्देह वैसी ही होती है । ५२ ।। वे कहेंगी रमने भी सीता को घर में कई माह रहने के बाद भी पुनः बिना कसी रोक टोक, पूछताछ के घर में रख लिया, तब आप हमें क्यों निकालते हो ।

गुप्तचर विजय दूत के द्वारा ये वचन सुनकर रामजी ने अपने स्वजनों आत्मियों से पूछा कि आप सब क्या कहते हैं । उन्होंने भी यही कहा कि निःसन्देह सभी के मन में ऐसी ही बात है और यही चर्च्चा का विषय बना हुआ है ।

तब श्रीराम ने लक्ष्मण को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा - सीता के कारण मेरी बड़ी लोक निन्दा हो रही है । अतः तुम कल सुबह ही बिना मुझसे प्रश्न किये सीता को रथ में बिठाकर दूर जंगल में छोड़ आओ । इस विषय में यदि तुम इन्कार करोगे तो मानों मेरी हत्या ही करोगे । ५४-५६ ।

लक्ष्मणजी ने रामजी की आज्ञा पाकर सीताजी को बाल्मीकि मुनि के आश्रम नजदिक जंगल में छोड़दिया व कहे मातः ! मे निर्दोष हूँ 'रघुनाथ जी ने लोकापवाद से डरकर तुम्हें त्याग दिया है, इसमें मेरा कोई दोष नहीं है, यह कहकर लक्ष्मण सीता को जंगल में छोड़ राम के पास चले ओय ।

यह घटना सुनकर पार्वतीजी ने शंकर भगवान से कहा-जीवों के उद्धार हेतु अखिल ब्रह्माण्ड नायक परमब्रह्म की विशुद्ध भक्ति को सुदृढ नौका सदृश्य वताया जाता है । संसार सागर से पार होने के लिये इससे

श्रेष्ठ साधन कोई नहीं है । सिद्ध, मुनि, योगी, यति, संन्यासी, भक्तगण श्रीराम को परम अद्वितीय सबके कारण और प्रकृति के गुण प्रवाह से परे बतलाते हैं ।

लेकिन् कुछ शंकास्पद लोग कहते हैं कि राम परब्रह्म होने पर भी माया से आवृत हो जाने के कारण अपने आत्मस्वरूप को नहीं जानते थे । इसीलिये विश्वामित्र एवं वशिष्ठ मुनि के उपदेश से उन्होंने अपने कल्याण स्वरूप आत्मा को जाना था । एक दिन साधारण धोबी ने क्रोधावेश में उसकी पत्नी को कह दिया था कि मैं कोई राम नहीं जो तुम्हें घरमें रख लूंगा । तू सच सच बता कल दिन भर कहां रही थी ? यह दोषारोपण की बात सुन रामजी ने निर्दोष सीता का क्यों त्याग कर दिया और फिर उसके वियोग में विलाप क्यों किया ? यदि राम सर्वज्ञ नहीं है, और उन्हें आत्मज्ञान हुआ था, तो वे सामान्य जीवों के समान ही हुए; तो मैं आपसे पूछती हूँ फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये ? इस विषय में जो सत्यता है, वह कृपया आप मुझे समझाने की कृपा करें जिससे राम और परमब्रह्म राम के सम्बन्ध में सन्देह दूर हो सके । मैं आपसे पुरुषोत्तम परमात्मा का सनातन तत्त्व पूछना चाहती हूँ और आप भी सनातन हैं, इसलिये आप से कुछ छिपा नहीं है । महापुरुष अत्यन्त गोपनीय तत्त्व को भी अपने श्रद्धालु अधिकारी भक्त को अवश्य कह देते हैं । हे देव ! मैं आपकी भक्त हूँ, यदि आप ऐसा मानते हैं तो मेरे प्रति श्रीराम तत्त्व का, सनातन तत्त्व का उपदेश करने की कृपा करें जिससे मेरा संशय निवृत हो सके ।

हनुमान की परीक्षा

सद्गुरु वही जो उपदेश के बाद जिज्ञासु के अनुभव की परीक्षा कर उसके मन की स्थिति से अवगत हो जावे कि इसने मेरी कही बात को यथार्थ समझा या अन्यथा । जैसे प्रजापति ने 'द' मंत्र के तात्पर्य को देवता, राक्षस तथा मनुष्यों से पूछा एवं सन्तोषप्रद उत्तर पाकर उन्हें जाने को कहा । अर्जुन को भी कृष्ण ने ज्ञान देकर उसके अनुभव को पूछा कि क्या तुमने एकाग्रता पूर्वक सुना है । यदि सुना है तो बता तुम्हारा पूर्वेवत् शोक-मोह शेष है, या उसका नाश हुआ ? इसी प्रकार एकबार अचानक श्रीरामचन्द्र ने अपने भक्त हनुमान से पूछा- हे वीर ! तुम कौन हो ? हनुमान तत्काल सावधान होकर कहने लगे ।

देहदृष्टयात दासोऽहं जीव द्रष्टयात त्वदंशकः ।
आत्म बुद्धायात्वमेवाहमिति मेनिश्चितमति ।।

हे नाथ ! देह दृष्टि से आप स्वामी एवं 'यह हनुमान' आपका दास है, जीव दृष्टि से यह आपका अंश है और तत्त्व द्दष्टि से आप में और मुझमें कोई अन्तर नहीं है, ऐसा मेरा दृढ़ निश्चय एवं अनुभव आपकि कृपा से जाग्रत हो गया है ।

यथाहं च तथा यूयं नाहं भेदः श्रुतौ श्रुतः ।
प्राणोऽहं चैव यूष्माकं यूयं प्राणा मम प्रभो ।।

हे प्रभो ! जैसा मैं हूँ वैसे ही तुम हो । हममें तुममें कोई भेद है । मैं तुम्हारा प्राण हूँ और तुम भी मेरे प्राण रूप हो । इस प्रकार अनन्यता है ।

हे हनुमान ! यह रहस्यमय उपदेश आत्म स्वरूप राम का हृदय है, जिसे मैंने तुम्हें सुनाया है । यदि तुम से लोग धन, राज्य, पत्नी मांगे तो दे देनाकिन्तु इस १०८ उपनिषद के सार अमृत ज्ञान को, आत्मा में अश्रद्धा रखने वाले को, भक्ति हीन दुष्ट पुरुष को कभी मत सुनना । किन्तु श्रद्धालु साधन चतुष्टय अधिकारी से तुम कभी मत छुपाना ।।५२ ।।

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परांकृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।

– गीता : १८/६८

हे हनुमान ! जो इस गूढ आत्म तत्त्व को जिज्ञासुओं के प्रति निष्काम भाव से प्रीति पूर्वक बतलाता है उससे बढकर संसार में मेरा कोई प्रियभक्त नहीं है ।

इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।

– गीता : १८/६७

हे हनुमान ! तुम यह सीता गीता रूप रहस्यमय उपदेश किसी भी काल में न तो तपरहित मनुष्य स कहना चाहिये, न गुरुभक्ति रहित से और न बिना सुनने की इच्छा वाले से ही कहना चाहियेः । तथा जो परमात्मा में दोषदृष्टि रखता है उससे तो कभी भी नहीं कहना चाहिये ।

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः ।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि ।।

गीता : १८/६९

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करने वाला मनुष्यों में कोई भी नहीं है तथा, पृथ्वी भर में उससे बढ़ाकर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्य में होगा भी नहीं ।

श्रद्धावाननसूयश्च श्रृणुयादपि यो नरः ।
सोऽपि मुक्तः शुभाँल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणाम् ।।

गीता : १८/७१

जो मनुष्य श्रद्धायुक्त और दोष दृष्टि से रहित होकर सीता गीता शास्त्र का विचार पूर्वक श्रवण करेगा वह भी पापों से मुक्त होकर उत्तम कर्म करने वालों के श्रेष्ठ लोकों में निवास करेगा ।

अध्येष्यते च य इमं धर्म्यं संवादमावयोः ।
ज्ञानयज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मितिः ।।

गीता : १८/७०

जो पुरुष इस धर्ममय हम दोनों के संवाद रूप सीता गीता शास्त्र को श्रद्धा पूर्वक ध्यान से पढ़ेगा उसके द्वारा मैं ज्ञानरूपी यज्ञ से पूजित होउँगा । ऐसा मेरा मत है ।

‘ज्ञानी प्रभुहिं विशेष पियारा’

जो ज्ञानी संत के प्रति परमात्म भाव रख उसके चरणों में प्रीति, श्रद्धा एवं सेवा करते हैं वे उन ज्ञानी संत से के अनन्त पुण्यराशि को भोगते हैं तथा जो ज्ञानी संत विरोधकर उनकी निंदा करते हैं, या उन्हें किसी रूप में भी कष्ट पहुँचाते हैं तो वे मूढ उन ज्ञानी संत के संचित् पापों काफल भाजगते् हैं । अस्तुः हे हनुमान ! यदि संत चरणों मे श्रद्धा प्रीति होता लाभउठा लें अन्यथा उनके समीप अश्रद्धा रख कभी नहीं जाना चाहिये ।

ꕥ●ꕥ

श्री महादेवजी बोले

हे देवी ! इस प्रकार हनुमान के प्रथम गुरु सीताजी हैं एवं अन्तिम श्रीराम हैं । मैंने तुम्हे यह अत्यन्त गोपनीय हृदयहारी परमपवित्र और पापनाशक 'श्री राम हृदय' सुनाया है ।। ५३ ।। यह समस्त वेदों का सार-संग्रह साक्षात् श्रीरामचन्द्रजी का कहा हुआ है । जो कोई इसे भक्ति पूर्वक सदा मनन करता हुआ धारण करेगा वह अवश्य ही मुक्त हो जायेगा । इसमें किचिंत भी सन्देह नहीं है ।।५४।।

हे देवी ! इसके नित्य पठन मात्र से अनेक जन्मों के संचित्, ब्रह्महत्या, भ्रुणहत्या, गो हत्या, गुरु हत्या, मात-पिता हत्या आदि समस्त महापापों का निःसन्देह नाश हो जाता है । क्योंकि आत्म निष्ठा का ऐसा ही चमत्कार है ।

मज्जन फल पेखिय तत्काला,
काक होहि पिक बकउ मराला ।

इस आत्म ज्ञान रूपी सरोवर में जो कौवा प्रकृति का जीव डुबकी लगा स्नान कर लेगा तो वह कोयलवत् मधुर भाषी हो जावेगा और जा बगलावत कपट बुद्धि वाला होगा तो वह हंसवत सारग्राही हो जावेगा । किन्तु हे पार्वती ! इस सत्संग सरोवर में आकर स्नान, पान करना भी बड़े सौभाग्य की बात है ।

अति खल जे विषयी बग कागा ।
रहि सर निकट न जाहि अभागा ।।

आवत एहि सर अति कठिनाई ।
राम कृपा बिनु आई न जाई ।।

गृह कारज नाना जंजाला ।
ते अति दुर्गम सैल समाना ।।

जो कर कष्ट जाई पुनि कोई ।
जातहि नींद जुड़ाई होई ।।

करि न जाई सर मज्जन पाना,
फिर आवइ समेत अभिमाना ।।

जो बहोरि कोई पूछन आवा,
सर निन्दा करि ताहि बुझावा ।।

हे हनुमान ! जो अतिशय दुष्ट कामी कौवे की तरह विषय- विष्ठा पर मोहित होने वाला तथा अपना दाव लगाने के लिये, लोगों को ठगने के लिये मात्र भक्ति का दिखावा करता है, वह पापी इस ज्ञान सरोवर के निकट कभी नहीं पहुँचता है । इस ज्ञानमार्ग के सत्संग पाने में बड़ी कठिनाई आती है । पहली बात तो गृहस्थ जीवन में प्राप्तः से रात्रि तक उदर पूर्ति, परिवार पालन में ही बहुत समय जाता है । सत्संगं के लिये समय ही नहीं मिलता । यदि समय निकाल पहुँच गया तो वहाँ बैठते ही उसे नींद आ जाती है । जब सत्संग समाप्त होने पर घर आता है, और यदि कोई उससे पूछता है तो वह सदगुरु एवं सत्संग की निंदा कर जिज्ञासुओं के मन में भी अश्रद्धा करा उन्हें सदमार्ग से भटका देता है । या स्वयं थोड़ी देर अभिमान-वश दूर से खड़ा-खड़ा सुन चला जाता है ।

हे पार्वती ! जिसकी अपने इष्ट में अनन्य भक्ति होती है, उसे ही ऐसा आत्मज्ञान का परम गोपनीय सत्संग प्राप्त होता है । अन्यथा देवी-

देवता उसे उस मार्ग से शीघ्र भटका ले जाते है ।

इन्द्रिय सुरन न ज्ञान सोहाई ।
विषय भोग पर प्रीति सदाई ।।

अर्थात– इन्द्रियोंके देवताओं को यह वेदान्त ज्ञान विष रूप लगती है एवं विषय चर्चा, भेदोपासना में उनकी रुची होती है । इसलिए वे देवता उस अपने भक्त को वेदान्त ज्ञान सत्संग से किसी प्रकार रोग–भोग–हानि मृत्यु का संयोग करा हटा लेते हैं एवं उस मन्द बुद्धिवाले जीव को अपना पशु बनाकर जन्म–मरण के कैद में फंसाये रखते हैं ।

मृत्योःस मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति

कठोप. २।१।११, २।१।१०

जो मनुष्य इस तत्त्व में नानात्व देखता है वह मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है अर्थात् बारम्बार जन्म–मृत्यु को ही प्राप्त होता है ।

योऽन्यां देवतामुपास्तेऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति
न स वेद यथा पशुरेवं स देवानाम् ।। बृहद.उप.१/४/१०

यह आराध्य देव भिन्न है, और मैं इससे भिन्न हूँ इस प्रकार से जो अपने से भिन्न देवता की उपासना करता है वह अज्ञानी परमार्थ तत्त्व को नहीं जानता है वह देवताओं का पशु है ।

दशरथ भेद भक्ति उर लावा, ताते उमा मोक्ष नहीं पावा ।।

हे उमा ! तुमने मुझसे पूछा था न ! कि राम के पिताश्री दशरथ को मोक्ष क्यों नहीं मिला और उन्हें स्वर्ग तक ही पहुँच पुनः मृत्यु लोक में क्यों आना पड़ा ? तो उसका कारण यह है कि उन्हें अद्वैत ब्रह्मज्ञान नहीं हो पाया था, और वे अपने बेटे राम का, चिन्तन करते, पुकारते मृत्यु को प्राप्त हुऐ थे इसीलिये ब्रह्मज्ञान के अभाव में उनका मोक्ष नहीं हो सका ।

हे पार्वती ! मैं तुम्हें सत्य कहता हूँ, जीव जब तक परमात्मा के साथ किंचित् भी भेद भावना रखता हुआ उपासना करेगा, तब तक वह कैवल्य मोक्ष को भी प्राप्त नहीं कर सकेगा । चाहे कोई अपनी भावना

भक्ति से अपने इष्ट ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, राम, कृष्णादि के लोक में ही क्यों न पहुॅच जावे; किन्तु अपने अखण्ड़ , व्यापक, आत्म स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण उन्हें उन-उन अपने इष्ट के लोकों से पुण्य समाप्ति पर पुनः इस मृत्यु लोक में गिरा दिया जाता है । गीता ८/१६

हे पार्वती ! अब मैं तुम्हें इस परम पावनी, सर्व दुःख हारणी, परमानन्द प्रदायनी, मुक्ति स्वरूपा ब्रह्मविद्या (आत्मविद्या) की अनन्त महिमा को संक्षेप में कहता हूँ ।

आत्म विद्या

अन्य विद्या परिज्ञानमवश्यं नश्वरं भवेत् ।
ब्रह्मविद्या परिज्ञानं ब्रह्मप्राप्ति करं स्थितम् ।।

आत्म ज्ञान कराने वाली ब्रह्मविद्या ही एकमात्र ब्रह्मानुभूति कराकर सदा स्थित रहने वाली है । शेष सभी विद्या केवल इसी जीवन में देह निर्वाह का साधन मात्र होकर देह के नाश हो जाने पर उसके ज्ञान का भी नाश हो जाता है । आगे के जन्म में उन्हें पुनः अ, आ, इ,ई, की तरह प्रारम्भ से ही सीखना पड़ता है ।

न मुक्ति जपनाद्धोमात् उपवास शतेरपि ।
ब्रह्मावाहमिति ज्ञात्वा मुक्तो भवति देहमृत ।।

महानिर्वाण तंत्र १४/११६

जप, होम, उपवास आदि सैकड़ों कर्म द्वारा भी मुक्ति नहीं हो सकती । जब तक कि गुरु उपदेश द्वारा वह ब्रह्म मैं ही हूँ ऐसा ज्ञानोदय नहीं होता तब तक जीव किसी भी कर्म साधन द्वारा मुक्त नहीं पाता है ।

गुरूपदेशतो ज्ञेयो नान्यथा शास्त्र कोटिभिः

देवी गीता ६/२३.

केवल सदगुरु द्वारा ब्रह्म विद्या प्राप्त कर ही जीव परमात्मा का अनुभव कर सकता है अन्यथा करोड़ों जन्मों में भी कर्म करके या शास्त्र पढकर नहीं जान सकता है ।

अज्ञान सर्प दष्टस्य ब्रह्मज्ञानौषधं बिना ।
किमु वेदैश्च शाश्त्रेश्च किमुमन्त्रैः किमौषधे ।।

विवेक चूड़ा ६३

अज्ञान सर्प दंश निवृत्ति हेतु एक मात्र ब्रह्मज्ञान ही महा औषध है । बाकी साधन निष्फल है अर्थात् कर्म, भक्ति, योग, त्याग, तपस्या याग-यज्ञादि साधन या जप, पूजा, पाठ तीर्थ, मन्दिर द्वारा यह जीव का संसार बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता ।

न योगेन न सांख्येन न कर्माणा नो न विद्याया ।
ब्रह्मात्मैकत्व बोधेन मोक्षः सिद्ध्यति नान्यथा ।।

विवेक चूड़ा ५८

मुक्ति की प्राप्ति न अष्टांग योगसे, न सांख्ययोग से, न कर्मयोग से न देव उपासना से होगी । उसके लिये तो किसी श्रोत्रिय - ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष द्वारा परमात्मा को आत्मा रूप से अर्थात् मैं रूप से ही जानना होगा । अन्य किसी भी कर्म, भक्ति, योगादि द्वारा मुक्ति की प्राप्ति नहीं होगी ।

ब्रह्मविद्या समा विद्या ब्रह्मविद्यासमा क्रिया ।
ब्रह्मविद्या समं ज्ञानं नास्ति नास्ति कदाचन ।।

मुण्डमाला पटल १०

ब्रह्मविद्या के समान न तो कोई विद्या मुक्ति प्रदान है, न ब्रह्मविद्या के समान कोई क्रिया तत्काल फल रूप है न ब्रह्मविद्या के समान कोई ज्ञान इस जगत् में है ।

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ४/३८

इस संसर में ज्ञान समान पवित्र करने वाला निःसन्देह अन्य कुछ भी साधन नहीं है ।

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ।।

- ९/२ : गीता

यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा है । सब गोपनीयों का राजा अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करने में बड़ा सुगम और अविनाशी है ।

मुक्तिस्तु ब्रह्म तत्त्वस्य ज्ञानदेव न चान्यथा ।
स्व प्रबोधं बिना नैव स्वस्वप्नो ही नश्यते यथा ।।

पंचदशी ६/२१०

जैसे स्वयं के जाग्रत हुए बिना नींद अथवा स्वप्न नाश नहीं होता है । समस्त स्वप्न भय से छुटकारा प्राप्त करने के लिये नींद से जाग्रत होना ही एक मात्र साधन है । इसी प्रकार मुक्ति प्राप्ति हेतु अपने देह भाव से जाग्रत होना मात्र कर्तव्य है । बिना आत्म ज्ञान (सोऽहम् ज्ञान) हुए बिना मुक्ति की प्राप्ति अन्य किसी भी साधन से नहीं हो सकती ।

ऋते ज्ञानात् न मुक्ति, ज्ञानदेव तु कैवल्यम्

ज्ञान बिना मुक्ति नहीं होती है । ज्ञान के द्वारा ही मुक्ति है ।

ज्ञानात्सज्जायते मुक्तिः भक्ति ज्ञानस्य कारणम्

– भगवती गीता १/४९

भक्ति के पुष्प खिलकर गिरने पर ही ज्ञान का फलोदय होता है फिर ज्ञान द्वारा मुक्ति रसानुभूति होती है ।

ज्ञान बिना पर तत्त्व न जानामि महीतले

मुण्डमाला तत्र १ पटल

इस पृथ्वी पर कहीं भी ज्ञान के बिना परमात्मा तत्त्व का अनुभव कोई नहीं कर सकता है ।

न मुक्तिर्जपनाद्धोमात् उपवास शतैरपि ।
ब्रह्मैवाहमिति ज्ञात्वामुक्तो भवति देहभृत ।।

महानिर्वाण तंत्र १४/ १०१

नाना जप, होम, उपवासादि द्वारा कभी भी मुक्ति लाभ नहीं होता है ''मैं वही ब्रह्म हूँ'', ऐसा सदगुरु से प्राप्त ज्ञान द्वारा ही मुक्ति होती है ।

वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान ,
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।
आत्मैक्य बोधेन विना विमुक्ति र्न,
सिद्धयति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ।

विवक चूड़ा ६

कोई भले शाश्त्रों की व्याख्या करे, खण्डन-मण्डन करे या प्रवचन करे, चाहे कूवां, धर्मशाला, अस्पताल, प्याऊ, अन्नक्षेत्र, स्कूल, अनाथाश्रम आदि लोक सेवा कार्य करे, चाहे कोई देवी-देवता की उपासना करे या देवताओं का यजन करे किन्तु जब तक आत्मा एवं परमात्मा की एकता का निश्चय नहीं होता, सोऽहम् भावोदय नहीं होता तब तक १०० ब्रह्माओं के बीत जाने पर भी जीव का मोक्ष नहीं हो पाता है ।

नाना शास्त्र पठेन्लोके नानादेवत पूजनम ।
आत्म ज्ञान विनापार्थ सर्व कर्म निरर्थकम ।।

- शिवसंहिता

कोई षड़ दर्शनाचार्य की उपाधि प्राप्त करले, चाहे कोई संसार के सभी देवताओं का पूजन करले किन्तु बिना आत्मज्ञान के सभी कर्म जन्म-मरण दिलाने वाले होने से मुमुक्षु के लिये व्यर्थ ही है ।

कुरूते गंगा सागर गमनं व्रतपरिपालनमथवा दानम ।
ज्ञान विहीन सर्वमतेन मुक्ति न भवति जन्म शतेन ।।

मोहमुदगर शंकराचार्य

चाहे कोई गंगा सागर जा स्नान करे, चाहे नाना व्रत उपवास कर स्वर्ण, पृथ्वी, अन्न वस्त्रादि का दान करे किन्तु आत्मज्ञान बिना सभी कर्म करते हुए १००० जन्म में भी भुक्ति नहीं हो सकेगी ।

श्रवणं मननं ध्यानं ज्ञाननान्चैव साधनम ।
यज्ञ दान तपस्तीर्थ वेदैर्मुक्तिर्न लभ्यते ।।

गरुड़ पुराण १/२४१/७

तत्त्वमसि आदि वेदान्त महावाक्यों का श्री सदगुरु द्वारा श्रवण, मनन निदिध्यासन करना ही मुक्ति प्रदायक ज्ञान के साधन है । वेदोक्त कर्म, उपासना, यज्ञ, दान, तप, तीर्थादि साधनों से मुक्ति की प्राप्ति कभी नहीं होती है ।

अश्वमेध सहस्त्राणि वाचपेय शतानि च ।
ब्रह्मज्ञान समं पुण्यं कलां नाहति षोऽशीम ।।

ज्ञान संकलनी तंत्र ९०.

चाहे कोई सैकड़ों वाजपेय यज्ञकरे, चाहे कोई हजारों अश्वमेध यज्ञ अनुष्ठान करे, किन्तु सदगुरु से प्राप्त ब्रह्मविद्या के महान फल के समक्ष यह सभी जड़ कर्मों का फल चन्द्रमा की १६ कलाओं में से एक कला के तुल्य जैसा भी प्रभावशाली नहीं होता है । अर्थात् वह तुच्छ ही है ।

ज्ञानादेव तु कैवल्यमिति वेदान्त डिन्डमः

यह वेदान्त का उच्च उदघोष है कि ब्रह्मात्म ऐक्य अर्थात् सोऽहम् ज्ञान के द्वारा ही मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

तपस्तीर्थं जपो दानं पवित्रानि तरूणि च ।
नालं कुर्वन्ति तां सिद्धि या ज्ञान कलया कृता ।।
तस्मात् ज्ञानेन सहित ज्ञात्वा स्वात्मनमुद्धव ।।
ज्ञान विज्ञान सम्पन्नो भज मां भक्ति भावतः ।।

भागवत ११/ १९/४-५

अर्थात् पंचाग्नि तपना, तीर्थयात्रा करना, जप अनुष्ठान करना, स्वर्ण, भूमि, गौ, अन्न, वस्त्राति दान करने के द्वारा यह मन की शुद्धि अंश मात्र भी नहीं हो सकती है, जो सदगुरु द्वारा प्राप्त आत्म ज्ञान, सोऽहम् ज्ञान वृत्ति के द्वारा होता है । अतः मुमुक्षुओं को कर्म का फल अनित्य, बन्धन एवं दुःख रूप जान उनका त्याग कर देना चाहिये । एवं सदगुरु द्वारा अपने आत्म स्वरूप को जड़ अनात्म नश्वर देह से से भिन्न भली प्रकार ज्ञान, सोऽहम् निश्चय मैं ही निरन्तर मन बुद्धि को लगा रखना चाहिये । इसी वृत्ति द्वारा जीव का मों होता है, अन्य कर्म एवं निष्ठा द्वारा नहीं ।

तीर्थे चाण्डाल गेहे वा यदि वा नष्ट चेतनः ।
परित्यजन्देहमेवं ज्ञानादेव विमुच्यते ।।

शिवगीता १३

हे पार्वती ! जिस भाग्यशाली मुमुक्षु को सदगुरु कृपा से देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि आदि संघात् में अहं तथा मम (मैं-मेरा) भाव समाप्त हो चुका है । जो कर्ता एवं भोक्तापन के अहंकार से रहित अपने को केवल द्रष्टा, साक्षी, आत्मा रूप निश्चय से जान चुका है । ऐसे ज्ञानी महापुरुष का शरीर-प्राण यदि उसके पूर्व जन्म के प्रारब्धानुसार तीर्थ में जाकर निकले अथवा जप, ध्यान, देव-दर्शन करते हुए छूट जावे या देह कष्ट से उसका आत्मध्यान छूट के "मैं मर जाऊँगा" इस प्रकार देहात्म बुद्धि करता हुआ प्राण छोड़ देवे । हे पार्वती उसके मोक्ष में किंचित् भी सन्देह नहीं करना चाहिये । क्योंकि जिस क्षण उसने देहभाव का परित्याग कर अपना आत्म स्वरूप का निश्चय किया था कि मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ, वह उसी क्षण से मुक्त हो चुका है । हे पार्वती ! ज्ञान समकाल में जीव की मुक्ति उसी प्रकार हो जाती है ? जैसे अग्नि के प्रकट होते उसमें उष्णता, दाहकता तथा प्रकाश धर्म भी भासमान हो जाते हैं।

महात्म्य

हे पार्वती ! जो कोई अत्यन्त भ्रष्ट, अतिशय पापी, परधन हारी, परस्त्रियों में सदा प्रवृत रहनेवाला, चोर, ब्रह्म हत्यारा, योगीजनों का अहित करने वाला मनुष्य भी यदि इस ब्रह्मविद्या रूप सीता-गीता महाशास्त्र का भक्ति पूर्वक सदगुरु मुख से स्वाध्याय करता है, तो वह सोऽहम् ज्ञान द्वारा समस्त देवताओं के पूज्य हो, उस परम पद को प्राप्त होता है ; जहाँ से पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होना पड़ता है । जो पद योगियों को भी परम दुर्लभ है ॥५६॥

तावद् गर्जन्ति शस्त्राणि जम्बुका विपिने यथा ।
न गर्जति महाशक्ति र्यावद्वेदान्त केसरी ॥

हे पार्वती ! जब तक महाबलवान् सिंहनाद (गर्जना) नहीं करता है तभी तक वन में सियार, खूब हो हो हल्ला शोर गर्जना करते हैं किन्तु सिंह गर्जना होते ही सब जहाँ-तहाँ छुप जाते हैं । इसी प्रकार जब तक **'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' 'नेह नानास्ति किञ्चन' तत्त्वमसि'** आदि इन वेदान्त सिद्धान्तों की गर्जना किसी वेदान्त केसरी महापुरुष द्वारा नहीं होती है, तभी तक पुराण कथा लौकिक शास्त्रों, एवं भेद सिद्धान्तों का शोर होता रहता है ।

हे पार्वती ! जहाँ वेदान्त केसरी की गर्जना एक बार कानो में पड़ जाती है फिर उस कान को अन्य कथाओं में रस नहीं आता है ।

इति श्रीमदध्यात्म रामयणे उमा महेश्वर संवादे
बालकाण्डे श्री राम हृदयं नाम प्रथम सर्गः

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित दुःख भागभवेत ।।

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

भजन

तुम्हीं मेरे सत घन, तुम्ही मेरे चितघन ।
तुम्हीं आनन्द मेरे, एक नित्य निरंजन ।।

तुम्हीं मेरे भगवन, तुम्ही मेरी पूजा ।
जप तप तीरथ मन्दिर,दिखे नहीं दूजा ।।

तुम्ही पिता माता बन्धु, सखा सेवक मेरे ।
तुम्हीं मेरे सदगुरु, स्वामि प्यारे प्यारे ।।

ज्ञान बिना है क्या, सार इस जीवन में ।
ज्ञान ही मुक्ति दाता, कहा सब वेदन में ।।

तुम्ही मेरे जीवन नैया, तुम्हीं हो खेवैया ।
देकर मुझे आत्मज्ञान, मोक्षधाम पहॅुचैया ।।

जो अज्ञानी अंधे हैं, तुम्हे वे क्या जानें ।
देख तुम्हे वे बस, एक इन्सान मानें ।।

मगर जिसने देखा है, स्वरूप तुम्हारा ।
उनके लिये बस तुम, हो एक भगवान ।।

जो अज्ञानी जन तुमरी, निंदा कर रहे है ।
वो संसार सागर बीच, डूब मर रहे है ।।

भगवान आनन्द सागर, प्रशांत देख रहे हैं ।
तरंगवत भक्त सबहि, मस्त हो रहे है ।।